हम जीत गये

[परम पूज्य प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्रीजी म० सा०
के जीवन और साधना पर आधारित उपन्यास]

श्री खरतरगच्छीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर

लेखिका :
साध्वी सुरेखा श्री

प्रकाशक :
ताराचन्द संचेती
मालीराम फकीरचन्द
२६३-६४, जौहरी बाजार, जयपुर-३
फोन नं० घर : ६३४६४, दुकान : ७२६०४

हम जीत गये

□ साध्वी सुरेखा श्री

□

प्रथम संस्करण—१०००
वर्ष : १९८१

□

मुद्रक :
फ्रैण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर-३०२ ००३

दो शब्द

जैसे सागर में अनेक रत्न पैदा होते हैं जो अपने प्रकाश से जगत को आलोकित कर देते हैं, ऐसे ही संसार में जो महापुरुष होते हैं वे अपने ज्ञान-प्रकाश से जनमानस को प्रकाशित कर देते हैं। संतों की आवश्यकता संसार को सदा रही है और रहेगी। संतों की कोटि में अग्रगण्य स्थान प्राप्त करने वाली वर्तमान युग में अध्यात्म-साधना की साधिका प्रवर्तिनी स्वर्गीया विचक्षण श्रीजी म० सा० भी अपने ज्ञान-प्रकाश से जन-जन के मन को प्रभावित कर वैसाख शुक्ला चतुर्थी वि० सं० २०३७ में १८ अप्रेल, १९८० को स्वर्ग सिधार गईं।

ख्यातिप्राप्त आपका अलौकिक जीवन सदा सर्वदा सभी के लिए उदाहरणीय रहा है। आपश्री के जीवनगत अनेकानेक सद्गुण प्राणिमात्र को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते।

कई जनों की यह मांग रही कि आपश्री का विशिष्ट जीवन चरित्र प्रत्येक घर में पहुँचे और उसे पढ़कर पाठक स्वजीवन को तद्रूप बनाने में सप्रयत्न रहे। इस मांग की पूर्ति-हेतु विदुषी आर्यारत्न सुरेखा श्रीजी (एम. ए.) ने उनका जीवन आधुनिक ढंग से अपनी कलम

से आलेखित किया है जो पाठक को परम रुचिकर होगा और उसके मन को आकर्षित किये विना नहीं रहेगा। इसे पढ़ना प्रारम्भ करने पर पाठक सम्पूर्ण कर ही विराम लेगा।

साध्वीजी ने अपनी लेखनी से चरितनायिका के जीवन चरित्र को इतना सुसज्जित किया है कि जिसे संत जीवन की साधना कहते हैं, उसे साधना रस से ओत-प्रोत कर दिया है, जो परम प्रेरणाप्रद होगा। महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्पण रूप है। जैसे दर्पण में देख मानव अपने शृंगार में रही हुई त्रुटियों को समझ कर दूर करता है, वैसे महापुरुषों के जीवन चरित्र रूप दर्पण को देख मानव स्वचारित्रगत त्रुटियों को दूर कर सकता है। प्रवर्तिनी विचक्षण श्रीजी म० सा० की विलक्षण जीवनी पाठक को विचक्षण बनाने में परम पथ-प्रदर्शिका बनेगी।

समता रस पान से पीन बनी प्रवर्तिनी श्रीजी की उच्चात्मा कैन्सर जैसी भयंकर व्याधि में भी सुदृढ़ रहकर संतों द्वारा समता की साधना कैसे की जाय; यह उदाहरण प्रस्तुत कर गई।

"हम जीत गये" यह पूज्या गुरुवर्या श्री के मुखारविन्द से प्रस्फुटित हुए शब्दों की शृंखला है। डॉक्टर मेहता ने आपश्री को महाव्याधि कैन्सर की भयंकरता से परिचित करा, आपको औषधोपचार के लिए वाध्य किया। पर आपश्री का हर हमेश नकारात्मक उत्तर रहा। मेहता सा० के पूछने पर कि आपको कुछ कहना है? तव आपने कहा—डॉक्टर साहब "अब तो हम जीत गये"।

वास्तव में आपने यथार्थ स्थिति से अवगत कराया कि इस व्याधि को सहन करने की अविचल क्षमता व शक्ति गुरुजनों की कृपा से प्राप्त हो ही गई।

मुझे परम हर्ष हो रहा है कि साध्वीजी ने अथक परिश्रम से प्रवर्तिनी श्री के जीवन को पूर्णतः उल्लिखित कर साहित्य-सर्जन में वृद्धि की है। शासन देव से यही प्रार्थना है कि लेखिका उत्तरोत्तर अपनी ज्ञान-साधना में सुवृद्धि करते हुए शासन-सेवा से लाभान्वित हो स्वकल्याण करे। यही मेरा अंतःकरण से शुभाशीर्वाद है

—प्रविवल श्री विनीता श्री

स्वकथ्य

भारत की राजधानी देहली में सर्वप्रथम परम पूज्या शासन प्रभाविका, समन्वय-साधिका, जैन कोकिला, प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्रीजी म० सा० के दर्शन का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मन की उठती हुई उर्मियाँ उस प्रशान्त महासागर में हिलोरें ले रही थीं। नयन स्तब्धता से सौम्य मुद्रा को निहार रहे थे। वात्सल्य-वारिधि की पीयूषमयी वाणी से अन्तर्मानस का सिंचन होने लगा। कदम्ब की कलियाँ उदीयमान भानु की रश्मियों से विकसित हो जाती हैं, उसी भांति उपदेशामृत से रोमराशि उल्लसित-विकसित होने लगी। धन्य घड़ी, धन्य वेला, धन्य दिवस हुआ गुरुवर्या श्री के दर्शन कर। चरण-शरण पाने को मन दौड़ने लगा और शनैः शनैः पूज्या श्री का व्यक्तित्व खुली पुस्तक के सदृश महसूस होने लगा।

और तभी से जी चाहने लगा कि पुस्तक पर ही इस व्यक्तित्व को अंकित कर दूँ। पर मैं अल्पज्ञ उस कार्य को करने का दम न भर सकी। सागर के समान आपका जीवन! उसे भला किस प्रकार लेखनी द्वारा आलेखित किया जाय? विचारों के गोते खाते-खाते यकायक एक राह दिखाई दी। बहती हुई सरिता से पिपासा को शान्त

करने के लिए कोई गिलास भर लेता है, तो कोई लोटा, तो कोई घड़ा। मैंने भी सागर में से गागर भर कर उसे जन समूह के सामने रखने का संकल्प किया।

परम पूज्या तपस्विनी प्रधान पद विभूपिता अविचल श्रीजी म० सा० का शुभाशीर्वाद प्राप्त कर, पूज्या कोकिलकण्ठी शासन ज्योति, प्रखर वक्ता, शतावधानी मनोहर श्रीजी म० सा० की सतत प्रेरणा, विदुषी आर्या स्वनाम धन्या विनीता श्रीजी म० सा० का मार्ग-दर्शन व सामग्री-संकलन में सहयोग प्राप्त होता रहा। विगत जीवन की झांकी 'जैन कोकिला' से भी मिली। पू० मुक्ति प्रभा श्रीजी म० सा० ने कहा—यदि तुम कुछ लिखना ही चाहती हो तो इस ढंग से लिखो जो कि संक्षिप्त हो। क्योंकि गुरुवर्या श्री के जीवन, उनके व्यक्तित्व पर तो ग्रंथ भी निर्मित हो सकता है। पर आधुनिक युग में व्यक्ति के पास इतना समय कहाँ ? अतः उपन्यास के रूप में इसे लिखा जाय तो ठीक रहेगा।

निरन्तर मिलती हुई प्रेरणा, निर्देशन व गुरु-कृपा से इस कार्य को करने में किञ्चित् सफलता प्राप्त हो सकी है। यह बल मिला मुझे गुरुवर्या श्री की महती कृपा से। हालांकि उनके जीवनगत कुछ ही अंशों को इसमें उतारा गया है।

गुरुवर्या श्री के जीवन से, व्यक्तित्व से, उनकी समतामयी साधना से जो अनभिज्ञ हैं, उन्हें इससे कुछ प्रकाश मिल पायेगा। मैं एक छोटा प्राणी, जिसने यह दुस्साहस अवश्य किया है। मेरी बाल लेखनी बरबस ही चल पड़ी है। इस पुस्तक को पढ़कर आप उनके साधनामय जीवन से परिचित हो जावें और उनकी जीवनगत विशेषताएँ आत्मोत्थान, स्वोत्थान में आलम्बन रूप हो सकें, यही कामना है।

हो सकता है इस लेखन-कार्य में त्रुटि रह गई हो। गुरुवर्या श्री के व्यक्तित्व को यह कलम उभार न सकी हो। अन्य कई महत्त्वपूर्ण अंशों का इसमें समावेश भी न हो पाया हो। इसे आप, मुझे अज्ञ समझ क्षम्य कर देवें।

श्रीमान् डॉ० नरेन्द्र भानावत, रीडर, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय ने इसका सम्पादन-संशोधत कर सहयोग दिया है। गुरुजनों के वरद् हस्त एवं सभी के सहयोग से यह कार्य पूर्ण हुआ है।

श्रीमान् ताराचंदजी संचेती ने, जो कि गुरुवर्या श्री के अनन्य श्रद्धालु भक्त हैं, गुरुवर्या के दिवंगत होने के पश्चात् षड्मासीय स्मृति समारोह में पूर्ण सहयोग दिया। इस उपन्यास को प्रकाशित कराने का श्रेय भी आपको ही है। आपने चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग धर्म-कार्य में करके पुण्योपार्जन किया है।

गुरु विचक्षण पद-रज

सुरेखा श्री

प्रस्तावना

परम पूज्य प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्रीजी म० सा० इस युग की महान् साधिका एवं आदर्श सन्त व्यक्तित्व थीं। ज्येष्ठा नक्षत्र में जन्म लेने व पिता की ज्येष्ठ सन्तान होने के कारण उनका नाम जेठी बाई रखा गया पर अपने मधुर व्यवहार, करुण-कोमल भाव और कान्तिमय अप्रतिम सौन्दर्य के कारण वे बचपन में दाखी बाई ही कहलाईं। उनमें ज्येष्ठ मास की प्रखरता और द्राक्षा भाव की कोमलता-मधुरता का अद्‌भुत समन्वय था। आगे चलकर यह प्रखरता धर्म-साधना में और कोमलता-मधुरता लोकोपकार में चरम आदर्श बनकर प्रकट हुई।

जैन धर्म में दीक्षित होकर भी विचक्षण श्रीजी म० सा० विचारों में अत्यन्त उदार एवं व्यवहार में समन्वयवादी-समताशील थीं। उन्होंने धर्म को सम्प्रदाय, जाति या क्रियाकाण्ड से न जोड़कर मानव की सद्‌वृत्तियों के विकास और चेतना के ऊर्ध्वीकरण से जोड़ा।

उनमें साधना का तेज था और थी वचन-सिद्धि। वे बचपन से ही निर्भीक, निस्पृही और निर्लोभ वृत्ति की थीं। उन्हें सांसारिक राग-रंग लुभा नहीं सका। वे परम आनन्द की अनुभूति और दिव्य प्रकाश से साक्षात्कार करना चाहती थीं। इससे न उन्हें दादाजी के तलघर का बंधन रोक सका न ठाकुर की तोप का भय। वे निर्भ्रान्त व निर्द्वन्द्व हो अपने लक्ष्य की ओर बढ़ीं।

मानव जीवन मिल जाना एक बात है और उसे देवत्व में परिणत करना दूसरी बात है। मानवीय सद्गुणों के विकास से ही यह सम्भव बनता है। अपने आचरण की पवित्रता और आन्तरिक शक्ति के प्रस्फुटन द्वारा श्री विचक्षण श्रीजी म० सा० ने यह साक्षात् कर दिखाया। साधारण व्यक्ति मानव-जन्म पाकर भी इसे आलस्य, इन्द्रिय-भोग, वैर-विरोध आदि में गंवा देता है और जीवन की बाजी हार जाता है पर जो प्रज्ञाशील होता है वह तप, संयम और जितेन्द्रियता में रमण करता हुआ जीवन–संग्राम में सच्ची विजय प्राप्त करता है।

इस जीवनीपरक उपन्यास की चरितनायिका श्री विचक्षण श्रीजी म० सा० एक ऐसी ही सच्ची वीरांगना थीं जिन्होंने 'तन में व्याधि, मन में समाधि' का जीवन्त उदाहरण प्रस्तुत करते हुए इस युग में आत्मवीरता का अनूठा कीर्तिमान स्थापित किया।

प्रवर्तिनी श्रीजी का साधनामय जीवन इस तथ्य की पुष्टि करता है कि निर्वेद भाव, बिना आन्तरिक वीर भावना के, वरेण्य

नहीं बनता। वे सच्चे अर्थों में आत्मवीर थीं। उनकी वीरता बहिर्मुखी न होकर अन्तर्मुखी थी। बहिर्मुखी वीर की वृत्ति आक्रामक और दूसरों को परास्त कर उन्हें अपने अधीन बनाने की रहती है। ऐसा वीर प्रतिक्रियाशील होता है। आवेगशील होने के कारण अधीर और व्याकुल होता है। वह अपने पर किसी क्रिया के प्रभाव को झेल नहीं पाता और भीतर ही भीतर संतप्त व त्रस्त बना रहता है। पर अन्तर्मुखी वीर की वृत्ति संरक्षणात्मक होती है। यह वीर बाहरी उत्तेजनाओं के प्रति प्रतिक्रियाशील नहीं होता। विषम/विदग्ध परिस्थितियों के बीच भी वह प्रसन्न चित्त बना रहता है। वह संकटों/परिषहों का सामना दूसरों को दबाकर नहीं करता। उसकी दृष्टि में सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति का कारण कहीं बाहर नहीं, उसके भीतर है। उसके मन में किसी के प्रति घृणा, द्वेष और प्रतिहिंसा का भाव नहीं होता। वह दूसरों का दमन करने के बजाय अपनी कापायिक वृत्तियों का दमन करता है। प्राणिमात्र के प्रति उसके मानस से प्रेम रस छलका पड़ता है। भगवान् महावीर ने कहा है—आत्मा के साथ ही युद्ध कर, बाहरी शत्रुओं के साथ युद्ध करने से तुझे क्या लाभ ? आत्मा को आत्मा के द्वारा ही जीतकर मनुष्य सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है।

कहना न होगा कि श्री विचक्षण श्रीजी म० सा० ने इसी आन्तरिक वीर भावना से प्रेरित होकर अपने असाता वेदनीय कर्म-पुद्गलों से संघर्ष किया। अपने अद्‌भुत क्षमाभाव/समताभाव और इन्द्रियनिग्रही व्यक्तित्व के बल पर उन्होंने दुःखों और रोगों पर विजय

पायी। उनका यह विजयोल्लास 'हम जीत गये' उपन्यास में बड़े सांकेतिक ढंग से व्यंजित हुआ है। यह उपन्यास उनके मृत्युंजयी व्यक्तित्व का सुन्दर आलेखन है। सचमुच उन्होंने जीवन को हारा नहीं, जीता है। वे मरकर भी अमर हैं। अद्भुत है उनका व्यक्तित्व, विचक्षण है उनकी दृष्टि और विलक्षण है उनकी साधना।

इस उपन्यास की लेखिका साध्वी सुरेखा श्रीजी परम विदुषी हैं। वे संस्कृत में एम० ए० हैं और राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर से सम्यग्दर्शन विषय पर पी-एच० डी० कर रही हैं। उपन्यास की चारितनायिका प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्रीजी म० सा० की शिष्या होने के कारण वे उनके समताशील जीवन एवं ध्यान-साधना की प्रत्यक्षदर्शी रही हैं। यही कारण है कि उपन्यास अपनी यथार्थता में अत्यन्त रोचक, प्रेरक, मार्मिक और सरस बन पड़ा है।

मेरा सौभाग्य रहा कि मुझे प्रवर्तिनी श्रीजी के सत्संग का जयपुर में किञ्चित् लाभ मिल सका। वे सचमुच समता और वात्सल्य मूर्ति थीं। मुझे पूरा विश्वास है, इस उपन्यास के अध्ययन—मनन से जीवन में आत्मजयता का भाव पैदा होगा और मनुष्यत्व के प्रति गौरव बढ़ेगा।

२३ जनवरी, १९८१
सी-२३५ ए, तिलकनगर
जयपुर-३०२ ००४

—डॉ० नरेन्द्र भानावत
एसोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

दीक्षा–पूर्व दाखी बाई

१

दासी ! मेरी बेटी दासी !!

नीचे उतर जा बेटा ! मैं तुझे न जाने दूंगा । मेरे पुत्र की इकलौती संतान, उसकी धरोहर. मैं तुझे किसी हालत में न जाने दूंगा । उतर जा बेटा नीचे ।

आज दासी अपने मौसेरे भ्राता मोहनराज कटारिया के आवास गृह भोजन हेतु आमन्त्रित थी । भोजन के पश्चात् भाई ने अपनी बहन का बंदोला चढ़ाया । आगे बैंड बाजों की ध्वनि के साथ अलंकारों से सुसज्जित घोड़ी पर सुशोभित हो रही थी दासी ।

राजस्थान प्रान्त के पीपाड़ शहर के बाजारों में घूमता हुआ बंदोला ठीक शहर बीच आ पहुँचा । कुलवधुएँ मंगलगान गा रही थीं । दासी का रूप, उसका नूर, लावण्य सब कुछ देखते ही बनता था । जिसने भी दासी को इस रूप में देखा, दंग रह गया ।

किसी ने कहा—ओह ! क्या सौन्दर्य है, कितना लावण्य है, इसके चेहरे पर। इसका मुख मण्डल देदीप्यमान हो रहा है। इसकी सुन्दरता उर्वशी और रम्भा को भी मात कर रही है। क्या यह स्वर्ग से उतर कर आई कोई अप्सरा है या पाताल लोक से आई नाग कन्या है या कोई देवी है। किस अदम्य उत्साह से यह संयम पथ पर आरूढ़ हो रही है।

कोई कह रहा था अरे ! दाखी की उम्र तो देखो। यह नन्ही सी बालिका हमें संकेत कर रही है, चुनौती दे रही है। हमारे बाल भी काले से सफेद हो गये हैं किन्तु हमारे मन की कलुपता में निर्मलता नहीं आई। हमारे विचारों में, हमारे आचारों में किञ्चित् मात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। धन्य है यह दाखी जो अल्प वय में सब कुछ त्याग कर जोगिन बन रही है।

अजी देखो ! वह अपार वैभव को ठुकरा रही है। भरा पूरा परिवार, सभी का प्राप्त दुलार, पर यह तो सभी की मोह-ममता त्याग रही है। कितनी सम्पत्ति है इसके परिवार में ? किस बात की कमी है इसके घर में ? दादाजी, माताजी, ताऊजी सभी की यह लाड़ली है। क्या इनका प्यार स्नेह वात्सल्य भी इसमें बाधक नहीं बनता ? इनके मोह-ममता के पाश में नहीं बंधती ? सांसारिक विषय-भोग इसे आकर्षित नहीं करते ? आधुनिक सुख-सुविधा के भौतिक साधनों में इसका मन अनुरंजित नहीं होता ? धन्य है, इसके परिवार को जो अपने कलेजे का टुकड़ा निकाल कर दे रहे हैं, वीर प्रभु के शासन को समर्पित कर रहे हैं।

कोई शंकित स्वर में कह रहा था—अरे ! इसकी सुकोमल कंचनवर्णी काया ! क्या संयम पथ पर आरुढ़ हो सकेगी ? मक्खन जो तनिक ताप से पिघल जाता है उसी तरह इसकी कोमल काया

संयम के दुष्कर मार्ग का अनुगमन कर सकेगी ? संयम जयपुर का मिश्रीमावा नहीं जो मुँह में रखा और गिटक गए। यह तो खड्ग धार पर चलने और लोहे के चने चबाने जैसा दुष्कर कार्य है। वाह री दाखी, धन्य है तेरी रत्न कुक्षिणी मां को जिसने उत्तमोत्तम संस्कारों से तुझे संस्कारित किया। ओह! मां और पुत्री दोनों ही वीर पथ की पथिका बन रही हैं।

सर्वत्र दाखी का विचित्र त्याग चर्चा का विषय बन गया। किन्तु विधि की गति को कौन जान सकता है कि कौनसी अप्रत्याशित घटना यहाँ घटने वाली है।

दादाजी को सम्मुख खड़े, प्रकम्पित स्वर में बोलते देख दाखी का मन द्रवित हो उठा। शीघ्र ही घोड़ी से नीचे उतर आई और विनम्र भाव से, मृदु स्वर में, संयत वाणी में बोली—

'दादाजी आप रुष्ट न होवें। चलो न! मैं तो तैयार हूँ। आप न जाने देंगें तो मैं कैसे जा सकती हूँ।' अपने अंक में दादाजी ने दाखी को भर लिया और बोल उठे—

'बेटा! मैं तुझे कैसे जाने दूँ। संयम रूपी खांडे की धार पर चलते हुए मैं तुझे कैसे देख सकता हूँ। दाखी! मेरे कलेजे का टुकड़ा! मेरे बुढ़ापे की लकड़ी!! मैं तुझे न जाने दूंगा। तुझे साध्वी बनाकर मैं तुझे अपने से दूर नहीं कर सकता। तेरी मां दीक्षा लेती है तो भले ही ले, तुझे तो मैं किसी हालत में नहीं जाने दूंगा।

दादाजी के आग्रह से दाखी उनके साथ अपने निवास गृह की ओर कदम बढ़ाने लगी। किन्तु उसके मन में यही चिन्तन चल रहा था कि किस प्रकार दादाजी का मोह दूर हो। किस प्रयत्न से वे शान्त हो मुझे संयम पथ पर बढ़ने की अनुमति प्रदान करेंगे।

शैशव से लेकर आज तक दादाजी को मैंने कभी इस प्रकार की मोह अवस्था में नहीं देखा। मोह की कैसी विडम्बना है ? मोहाधीन प्राणी की कितनी विचित्र अवस्था हो जाती है। दादाजी क्यों इतना मोह कर रहे हैं। ये स्वयं वृद्धत्व की ओर बढ़ते जा रहे हैं। पके पान हैं फिर भी मेरा मोह छोड़ने को तैयार नहीं। क्या करूँ ? किसको दोष दूँ ? मैंने ही किसी भव में किसी को संयम ग्रहण में अन्तराय दी होगी इसीलिये कठिनता से परिवार की आज्ञा मिलने पर भी आज दादाजी भरे बाजार में से मुझे ले चले। जरूर इसके पीछे कोई कारण होगा। वाह रे कर्मराज ! तेरे नाच भी विचित्र व अनोखे हैं।

कर्मों की विचित्रता व मोह की मजबूत जंजीरों में जकड़े प्राणियों का चिन्तन करते हुए दादाजी के साथ बढ़ती जा रही थी दाखी। इधर सेठ मगनमलजी दाखी के दादाजी सोच रहे थे कि किस प्रकार इसके विचारों में परिवर्तन किया जाय। जरूर इसे किसी ने भरमाया है, भड़काया है अन्यथा नन्ही सी इसकी जान, इसका दिमाग कितना हो सकता है। जबरन ही ये सभी बातें इसके मन-मस्तिष्क में लोह-चुम्बक की भांति अंकित कर दी गई हैं। यदि इस पर अंकुश लगाया जाय, दंड–भेद नीति अपनाई जावे तो इसका फितूर अवश्यमेव उतर जायेगा। अब मैं इसके साथ सख्ती से बरतूँगा। इसके साथ कठोर व्यवहार करुँगा। स्वर्ण हो या लोहा दोनों ही अग्नि के संयोग से पिघल जाते ही हैं, इसमें कोई दो राय नहीं। अब तक बहुत समझाया-बुझाया पर इसके एक न लगी। लातों के देव बातों से नहीं मानते। सेठ हरखचंदजी का कहना ठीक ही था कि नकली मोती का पानी जैसे शीघ्र ही उतर जाता है, उसी प्रकार इसका भी वैराग सख्ती से उतर जायेगा।

अद्भुत संयोग है, एक का अपने नाम के अनुरूप मृदु व कोमल स्वभाव है। जिसे मान, सम्मान, अपमान की भी परवाह नहीं सिर्फ

दादाजी के कहने मात्र से चली आई, न आक्षेप, न जिद। न कोई फोर्स न रोष। बस उतर कर चलने को कहा, तो विनीत भाव से पीछे हो चली। उधर दादाजी कड़क व्यवहार की बात सोच रहे हैं। वाहरे, विधि की विडम्बना।

वैराग्य का रंग हाथों में लगे मेंहदी के सुर्ख लाल रंग के साथ मिल कर निखर रहा था और सौन्दर्य में वृद्धि कर रहा था। डोरा बन्धन सांसारिक बंधनों से छूटने का संकेत दे रहा था। घर में हो रहे मंगलाचार, उत्सव महोत्सव उसके कल्याण पथ पर प्रयाण का संदेश दे रहे थे। अनायास ही इस घटना चक्र ने रंग में भंग कर दिया। सभी आश्चर्यान्वित हो दादा-पोती को जाते देख रहे थे। किंकर्तव्य विमूढ़ बने सोच रहे थे—यह क्या हो गया? घर-घर चर्चाएँ होने लगी। उत्सव महोत्सव ने विराम ले लिया। गाँव-गाँव से जो भक्ति मंडलियाँ आई थीं सभी ने अपनी-अपनी राह पकड़ी।

इधर दीक्षा देने वाली साध्वीजी भी खिन्न होकर विचारने लगी कि आज तक इस प्रकार का संयोग नहीं बना था। इस प्रकार तो जिन शासन की प्रभावना होने की बजाय और निंदा का कारण बन जाएगा। पर क्या करें? न जाने भविष्य में क्या होने वाला है। इस प्रकार दाखी की दीक्षा पर यह जो संकट आया है, वह किस प्रकार दूर होगा।

दाखी के साथ दादाजी हवेली आ गए।

दाखी को दादाजी ने समझाना प्रारम्भ किया—'दाखी तू मानजा। मैंने पहले भी कितनी बार तुझे समझाने का प्रयत्न किया पर तुझे कुछ समझ में नहीं आय।। दाखी! मैं तो बड़ी धूमधाम से तेरा विवाह करना चाहता हूँ। सारा पीपाड़ शहर तेरा विवाहोत्सव देखकर दंग रह जायेगा बस तू एक बार मुँह से हाँ कर दे।

यदि हिंगन घाट ही जाना चाहती है तो जो सम्बन्ध विच्छेद कर दिया गया था अब वहीं पर पुनः तेरा सम्बन्ध कर देंगे। अन्यथा अन्य स्थान पर कहेगी तो योग्य वर देखकर वहां तेरा पाणिग्रहण करा दूंगा। दाखी, मैं तुझे लग्न ग्रंथि में बंधा हुआ देखना चाहता हूं।

दाखी सब कुछ शांत, मौन व निश्चल भाव से सुनती जा रही थी। इधर दादाजी भी उसे समझाते जा रहे थे, बेटा ! मैं तुझे साध्वी वेश में मुण्डित मस्तक में नही देख सकता। तू मेरे वृद्ध जीवन का आधार, मेरे खुशहाल जीवन का चमन है। दाखी, मैं तुझे किसी भी हालत में अपने से दूर नहीं करना चाहता। मैं तुझे कदापि दीक्षा न लेने दूँगा।

बेटा ! अब तू दीक्षा की बात मुँह से भी मत निकालना। तू तो दीक्षा लेने को तैयार ही थी पर मैंने रुकावट डाली। तू इसकी तनिक भी चिन्ता न करना। इतना ठाठ बाट से तेरा विवाह करूँगा कि पूछो मत। अब इस दीक्षा के झगड़े को छोड़ दे। अरे ! यह उम्र तो खाने पीने मौज शौक उड़ाने की है। धर्म कर्म करने को तो पूरी जिन्दगी पड़ी है। इसलिए दाखी मेरी बात मान, तू एक बार शादी करने को राजी हो जा। फिर तू भी सुखी और मैं भी। तुझे सुखी देखकर सुख से मैं भी अपना जीवन व्यतीत करूँगा।

दादाजी के मन का गुबार निकल जाने के पश्चात् शान्त भाव से अपनी सहज सुलभ मीठी वाणी से दाखी ने कहना प्रारम्भ किया—दादाजी ! मैंने पहले भी कहा था और अब भी कह रही हूँ और आगे भी यह कहूँगी कि आप दीक्षा की सहर्ष अनुमति देंगे तभी दीक्षा होगी, अन्यथा नहीं। पर विवाह मेरी अनुमति के बिना नहीं होगा। देर-सवेर होगी तो दीक्षा ही किन्तु आपकी आज्ञा के बिना नहीं।

दादाजी परेशान हो उठे—यह नन्ही सी बालिका है, पर जरा भी तो विचलित नहीं होती। दादाजी बोल उठे—दाखी यूं हठ न कर। जरा मेरे वृद्धत्व की ओर तो नजर कर। इस प्रकार निर्दय न बन। तू यह न सोच कि लोक निंदा होगी। किन्तु तेरा विवाह तो मैं करा रहा हूँ, तू कहाँ इसके लिए तैयार है, बेटा! जिद न कर। बड़े जो कुछ कहते है तो सोच-विचार कर ही कहते हैं, अपने अनुभव के बल पर ही कहते हैं। कुछ तो रहम कर दाखी।

धैर्य की प्रतिमा बनी दाखी शान्त स्वर में बोली—'दादा! आप कहेंगे तो यावत् जीवन पर्यन्त आपके साथ रह लूंगी पर विवाह की बात आप न करें। भौतिक विषय भोगों में मेरी किञ्चित् मात्र भी रुचि नही। विवाह की बात तो उसी दिन गई जब हिंगन घाट गहने लौटा दिये थे। अब आप इसका नामोच्चारण भी न करें। मेरा अंतिम लक्ष्य तो त्याग ही है।'

दाखी के इस दृढ़ निश्चय को देख सेठ मगनमलजी सोचने लगे—इस प्रकार यह नही मानने वाली। साम और दाम ये दोनों नीतियाँ तो निष्फल गईं। अब दण्ड और भेद नीति को अपनाना पड़ेगा। मार के आगे भूत भागते हैं। जरा कड़क व्यवहार करूंगा तो इसकी बाल हठ दूर हो जायेगी। इस प्रकार जिन्होंने कभी जोर से भी दाखी को कुछ नहीं कहा, हमेशा प्यार व दुलार ही दिया, उन्होंने क्रोध का बाना पहन कर कड़क स्वर में कहा—

बड़ी आई त्याग-विराग की पूंछड़ी। धर्म कर्म को तो जाने तू ही जानती है। बड़ी चली है उपदेश देने। आत्मा-आत्मा की धुन लगा रखी है मानो तुझ में ही आत्मा है और किसी में आत्मा है ही नहीं। सारे घर को सिर पर उठा रखा है, तूफान खड़ा कर रखा है। आज की जन्मी छोकरी मुझ ७० वर्ष के बुड्ढे को बना रही है,

वहका रही है। खवरदार जो अब मुँह से एक शब्द भी निकाला तो. या इधर-उधर कहीं गई तो। टांग तोड़कर रख दूँगा, तलघर में लेजाकर पटक दूँगा और क्रोधावेश में दाखी को तलघर में वंद कर वाहर ताला लगाकर दादाजी वहाँ से चले गये।

दाखी अभी भी शान्त थी। न क्रोध था न ही रोष की रेखा भी उस पर उभरी। न क्षोभ और न ही तनाव था। विधि के खेलों को देखकर सोच रही थी पूर्व वद्ध कर्मों के अन्तराय स्वरूप यह खिलवाड़ हो रहा है।

जिस प्रकार स्वर्ण को तपाने से वह और निखरता है, चन्दन को जितना अधिक घिसा जाता है उतनी ही सुगन्ध का प्रसारण होता है। इक्षु को पीलने पर भी वह रस ही प्रदान करता है उसी प्रकार विघ्नों के आने पर महापुरुष उसे जीवन की कसौटी समझ कर अपने व्रत, नियमों में व्यवहार में और अधिक दृढ़ता को धारण करते हैं।

तलघर में वंद दाखी नवकार मंत्र का स्मरण करने लगी। सोचने लगी—चलो और विशेप धर्म करने का, स्वाध्याय-ध्यान करने का समय मिल गया। नवकार मंत्र का स्मरण विघ्न नाशक है, संकट-हारी है। अन्तराय कर्मों का अन्त धर्म-ध्यान से ही होगा। मेरा प्रवल पुण्योदय है कि मुझे जैन कुल मिला। आर्य संस्कृति, आर्य देश में मैं ने जन्म लिया। अन्यथा इतना कठोर व्रत धारण करने की मुझ में क्षमता कहाँ ? यह तो परम गुरु वीतराग देव की कृपा का ही सुफल है।

सेठ मगनमल दाखी की मां रूपादेवी के पास पहुँचे और उसे जली कटी सुनाने लगे—तू खुद इस कठोर मार्ग पर जाना चाहती है

तो भले ही जा, पर मेरी फूल सी बेटी को क्यों दुःख में घसीट रही है। उसकी फूल सी कोमल काया है जरा कष्ट पड़ते ही मुरझा जावेगी। आज तक इसने कभी भूख प्यास तो क्या किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति का सामना भी नहीं किया। तेरा मातृ हृदय इतना कठोर कैसे हो गया ?

जिस रूपादेवी ने कभी श्वसुर के सामने मुख तक नहीं खोला था, आज इस विषम परिस्थिति ने उसे श्वसुर के सामने बोलने को मजबूर कर दिया। भावावेश में रूपादेवी बोली—पिताजी, आप समझते हैं कि दाखी को मैंने ही यह सब कुछ सिखलाया है, पाठ पढ़ाया है, किन्तु मैंने तो इसे समझाने का बहुत प्रयत्न किया। यहाँ तक कि डरा धमका कर भी गृहस्थ मार्ग पर लाने की कोशिश की है, पर यह न मानी तो मैंने सोचा कि यह मार्ग कौन सा बुरा है। जब यह चाहती ही है तो मैंने अनुमति प्रदान कर दी। किन्तु इसके कारण अब तो मेरी भी बन आई। सारे पीपाड़ में हंगामा खड़ा हो गया। कभी-कभी तो मुझे क्रोध भी इस पर आने लगता है कि क्यों यह जिद पर चढ़ी हुई है। अब आप जानो और वह जाने। मैं तो समझाते-समझाते हार गई।

दादाजी इतना सुनते ही भड़क गए। घाव पर मानों और नमक छिड़क दिया। कहने लगे—पहले तो उसे पाठ पढ़ा दिया और अब कहती है आप जानो और वह। इस छोटी सी छोकरी ने आसमान सिर पर उठा लिया है। अब मैंने उसे ताले में बंद कर रखा है। खबरदार जो अब लाड़ लड़ाया तो मुझसे बुरा कोई न होगा। अब सारे लाड़ का प्रतिफल तुम्हें मिल जावेगा। देखना २-४ दिन में सब फितूर उतर जायेगा। यह सब ढोंग समाप्त हो जायेगा। कैसा इसने घर में कदम रखा है कि परेशान कर रखा है। अभी तो छोटी

२

बाल रवि ने इस जगतीतल को अपने प्रकाश पुंज से आलोकित किया। जैसे ही उषाकाल की प्रथम किरण ने इस धरा का चरण चुम्बन किया, वैसे ही सेठ मगनमल के यहाँ लक्ष्मी स्वरूपा बालिका ने रुदन करते हुए पृथ्वी को अलंकृत किया। रुदन था वेदना से भरपूर। वह रुदन जन्म-जरा-मृत्यु का संदेश दे रहा था कि जन्म के साथ मृत्यु अवश्यंभावी है।

नवागन्तुक का रुदन सुनकर घर के सभी सदस्य दौड़ पड़े कि किसका जन्म हुआ? नवीनता के प्रति सर्वत्र आकर्षण होता है। प्राचीन व पुरातन वस्तु कभी आकर्षण का केन्द्र नहीं बनती। पुत्र हो अथवा पुत्री ? चाहे जो हो वर्षों बाद यह घर बालक की किलकारियों से गूंज उठा। शिशु व प्रसूता की कुशल क्षेम पूछने सभी लोग उमड़ पड़े।

सेठ मगनमल पौत्री को पाकर फूले न समा रहे थे। सोच रहे थे पुत्री का जन्म हुआ है फिर भी न जाने मन मयूर क्यों उल्लसित हो रहा है। रोम राशि विकसित हो रही है। भारतीय प्रथानुसार पुत्री का जन्म हर्ष का विषय न था फिर भी सभी खुशी से सराबोर हो रहे थे।

क्यों न हो भला खुशी ? महापुरुषों के जन्म पर खुशी अव्यक्त रूप से प्रकट हो जाती है। घर का प्रत्येक सदस्य खुशी में झूम रहा था। वर्षोपरान्त गृह आंगन बालिका की मधुर मुस्कान से गूंज उठेगा। पुत्री को भारतीय संस्कृति में देवी तुल्या, लक्ष्मी स्वरूपा मानकर पूजनीया माना गया है। लक्ष्मी इस जगत् में किसे प्रिय नहीं होगी ? केवल मुनिजनों, त्यागी संन्यासियों के सिवाय निस्पृह भाव धारण करने वाले विरले ही इससे अनासक्त रह पाते हैं।

भंडारी मूथा गोत्रीय सेठ मगनमलजी सर्वत्र बधाई प्रसारण के लिए शीघ्रता से चल पड़े अपने दोनों पुत्र चुन्नीलाल एवं मिश्रीमल को तथा अपनी तीनों पुत्रियाँ हरखू बाई, लाली बाई तथा सुगनी बाई को। हाल में आप अमरावती में निवास करते थे। मूलतः निवासी थे जोधपुर प्रान्तान्तर्गत पीपाड़ शहर के। दोनों पुत्रों ने वहीं पर व्यापार प्रारम्भ कर दिया। अपनी दोनों पुत्र वधुओं को अपनी मातृ-भूमि पीपाड़ की स्मृति स्वरूप वहीं से लाए थे। दानमलजी बोरा की सुपुत्री सुन्दर बाई का विवाह ज्येष्ठ पुत्र चुन्नीलाल से तथा कनिष्ठ पुत्र मिश्रीमल का सम्बन्ध इन्द्रभानजी बोरा की सुता नानीबाई उर्फ रूपाबाई से किया गया।

इधर दोनों पुत्रियाँ हरखूबाई व लालीबाई का भी पीपाड़ में ही पाणिग्रहण कर दिया। सभी समधियों को तार द्वारा सूचित किया। जबकि दाखी की सबसे छोटी भुआ अर्थात् उनकी तीसरी

पुत्री सुगनीबाई धनराज पुगोत के साथ अमरावती में ही लग्न ग्रंथि में बंधी थी।

सर्वाधिक हर्ष मुग्रा को ही हो रहा था और अपने आपको पुण्यशाली समझ रही थी कि सर्वाधिक लाभ मुझे ही मिल रहा है।

दक्षिण बरार के अमरावती शहर में सर्वत्र बधाईयाँ दी गईं। पुत्र जन्म के सदृश ही सर्वत्र मिष्ठान्न का वितरण किया गया। प्रसूता रूपाबाई की उत्तम परिचर्या की जाने लगी। उनका हर सम्भव ध्यान रखा जाने लगा क्योंकि माता के स्वास्थ्य का प्रभाव शिशु पर पूर्ण रूपेण पड़ता है। लोकाचार गीत गान सम्पन्न हुए।

यकायक सेठ मगनमलजी सोचने लगे—किसी कार्य का अभाव तो नहीं रह गया। अन्ततः उन्हें खयाल आया ओह! ज्योतिषी को बुलाकर जन्मपत्रिका तो बनवानी थी। शीघ्रता से पंडितजी को बुलाने भेजा। ज्योतिषीजी आये और जन्मकुण्डली बनाई गई। सभी को उत्सुकता थी ग्रह नक्षत्र पूछने की। यह जानने की कि बालिका अपने साथ कैसा भविष्य लेकर आई है? पंडितजी के चेहरे पर आए भावों को पढ़ रहे थे सभी। ज्योतिषी की आश्चर्ययुक्त भावभंगिमा को देखकर सभी चौंक पड़े। इधर ज्योतिषी भी कुण्डली की ग्रह व्यवस्था को देखकर चकरा रहे थे। सेठ के घर में और इतना उत्तम राजयोग, ग्रहयोग इसी विचार में तन्मय बने वह असमंजस में पड़े थे। उनकी इस मुद्रा को देखकर सभी का हृदय धड़कने लगा। मानव मात्र का यह स्वभाव है किसी भावी कार्य की असफलता, अनिष्ट की आकांक्षा, अनहोनी घटना व अशुभ फल का संकेत होने पर वह आशंकित हो जाता है।

ज्योतिषी की भाव भंगिमा देखकर धड़कते हृदय से दादाजी

ने पूछा—क्या बात है ? आपकी मुखाकृति असमंजस में क्यों पड़ गई ? क्या ग्रहगोचर अनिष्ट है ? जैसा भी हो आप हमें स्पष्ट बतायें ।

सभी को सन्तुष्ट करते हुए पंडितजी ने कहा—नहीं ऐसी बात नहीं है । मैं तो इस बालिका के ग्रह देखकर आश्चर्यान्वित हो गया कि ऐसा उत्तम राजयोग है कि इसका जन्म क्षत्रिय कुल में होना चाहिये था । इसका आपके यहाँ पर जन्म होना ही विस्मय में डाल रहा है । या फिर हो सकता है कि यह योगिनी बने और अपनी ज्ञान गरिमा से विश्व को ज्योति प्रदान करे । ऐसे अपूर्व ग्रहों का योग वास्तव में पराक्रमी राजाओं के या महात्माओं के ही होता है । आप किसी अनिष्ट की चिन्ता न करें ।

धड़कते हृदय सन्तुलित हो गए । संतोष की रेखा सभी के चेहरे पर उभर आई । उत्तम ग्रह सुनकर सभी हर्ष से पुलकित हो उठे । हर्ष का साम्राज्य छा गया । जन्मकुण्डली का निर्माण किया गया ।

बालिका का नामकरण उस समय ज्येष्ठा नक्षत्र में तथा ज्येष्ठ संतान होने के कारण जेठीबाई किया गया । पंडितराज को श्रीफल और भरपूर दक्षिणा देकर विदा किया ।

द्वितीया के चन्द्र की भांति बालिका का विकास सम्पूर्ण सोलह कलाओं की भांति होने लगा । वह बलिका सुवर्ण वर्णी काया, सुसंस्कृत वाणी, बाल सुलभ चेष्टाओं, पूर्णिमा के चन्द्र की कौमुदी सी मुस्कान से सभी को अनुरन्जित करने लगी ।

शैशव काल को पूर्ण कर बालिका जेठीबाई ने बाल्यकाल में कदम रखा । माता ने उत्तम संस्कारों का पान स्तन-पान के साथ ही

कराया। किसी पाश्चात्य दार्शनिक ने कहा है 'बालक का मस्तिष्क एक स्वच्छ स्लेट के सदृश है। अनुभव व संस्कारों से ही उन पर अंक अंकित होते हैं।'

बालिका की तुतलाती मृदु सरल भोली-भाली वाणी से आकृष्ट हो सभी उसे दासी कह कर पुकारने लगे। दुःखियों का दुःख देखकर करुणा से उस बालिका का मन द्रवित हो उठता। किसी का कष्ट तो मानो दासी का ही कष्ट होता। सभी हर्ष से न समाते कि चार-पाँच वर्ष की बालिका है, पर इसकी चपलता, कार्य दक्षता तो देखो यह पतले-पतले गोरे-गोरे छोटे-छोटे हाथों से सभी के कार्य करने को तत्पर रहती। मानो यही कुशल गृहिणी हो।

इधर यह मां को सामायिक करते देख शीघ्रता से साथ ही अपना आसन तैयार रखती। प्रातः जो भी मंदिर जाने को कहते तो उन्हें दासी द्वार पर खड़ी मिलती। पूर्व जन्म से ही प्रभु भक्ति का स्रोत मानो मन में उमड़ रहा हो। उसकी नन्ही-नन्ही अंगुलियाँ कभी माला के मनकों पर फिरती हुई नजर आतीं। आश्चर्य करते सभी इस चार वर्ष की बालिका पर। इस उम्र में जहाँ शरीर की सुध नहीं होती वहाँ धार्मिक क्रियाओं की ओर इसकी रुचि अलौकिक है।

हर पल प्रसन्न मुद्रा से आबाल वृद्ध सभी के दिल को जीतने वाली, चतुराई से पूर्ण बातें बनाने में दक्ष, बीरबल के समान हाजिर-जवाबी, सभी के साथ विनम्र विनीत व्यवहार करने वाली। दासी की मुस्कान सभी के दुःखों को दूर कर देती। दादाजी की प्यारी, मां की दुलारी, पिताजी की लाड़ली परिवार के सभी सदस्यों का आकर्षण का केन्द्र थी। घर में घुसते ही सभी की जिह्वा पर दासी का ही नाम रहता। यदि कहीं क्षणों से दासी ओझल हुई कि सभी की निगाहें उसे खोजने लग जातीं।

भारत में उस समय शिक्षा का प्रचार व प्रसार आज की तरह समुन्नत न था। फिर स्त्री शिक्षा का तो प्रश्न ही नहीं। किन्तु सभी की लाड़ली दाखी को कुछ तो पढ़ाना ही चाहिये। यह सोच कभी दादाजी कुछ सिखा देते तो कभी ताऊजी। कभी पिताजी उसे कुछ समझाते थे। घर पर ही अक्षर ज्ञान कराने का प्रबन्ध किया गया। विचक्षण बुद्धि की धनी दाखी सभी की शिक्षाओं को दूध के समान गटागट पी जाती। जो उसे सिखाते वह सभी मनो-मस्तिष्क में अंकित हो जाता। अध्ययन की अभिरुचि देख छोटी-छोटी पुस्तकें लालाकर दाखी को दी जातीं और दाखी जिस पुस्तक को हाथ में लेती उसे पूरी करके ही दम लेती।

बाल्यावस्था को पार करके नन्हीं दाखी किशोरी बन गई। बाल चपलता का स्थान कुछ गम्भीरता ने लिया।

ताऊजी घर के सभी बालकों को प्रतिदिन चार-चार पैसे वितरण करते थे। चार पैसे—उस समय उनका मूल्य अधिक था। एक व्यक्ति की कमाई चार पैसे। वह एक दिन का परिवार का पालन कर लेता था। वह युग महंगाई का नहीं था, उस समय वस्तु का मूल्य कम, पैसे का मूल्य अधिक था। एक बार की बात है कि सदैव की भांति ताऊजी पैसों के वितरण हेतु बहुत सारी रेजगारी बिखेरते हुए बोले—आओ बच्चों! आज जिसे जितने पैसे चाहिये वह उतने ही ले सकता है। बालकों में पैसों का लालच विशेष रूप से होता है। सभी ललचाते-ललचाते आए आगे हाथ बढ़ाने लगे। कोई संकुचाते-संकुचाते आगे सरकने लगा। दाखी भी आई किन्तु न संकोच न लालच, बस अपने चार पैसे उठाये और चल दी। निर्लोभ वृत्ति व निस्पृहता को देखकर ताऊजी चकित रह गये और सोचने लगे कितनी ईमानदार है, एक पैसा भी अधिक नहीं उठाया। ताऊजी का हृदय

खिल उठा। यह स्वाभाविक बात है कि बालक में गुणों का विकास देखकर लोग फूले नहीं समाते। सर्वत्र प्रशंसा करते रहते हैं। उसी प्रकार ताऊजी भी दाखी की सर्वत्र प्रशंसा के पुल बांधने लगे।

जब दादाजी ने यह सब सुना तो विचार मग्न हो गये। ज्योतिषी के वचन कानों में गूंजने लगे। कहीं दाखी संन्यास..........। शंका से मन भर गया। ओफ! दाखी क्या सब कुछ छोड़ देगी, यह मुझ से सहन नही होगा। अभी से ऐसा कार्य करूँ जो न रहे बांस और न बजे बांसुरी! यदि दाखी को लग्न ग्रंथि में बांध दूँ तो इसका ध्यान उस ओर न जायेगा। उस समय बाल विवाह ही प्रचलित था। कभी-कभी तो गर्भ में ही बालकों का वाग्दान कर दिया जाता था।

इस निश्चय को मन में दबाये सेठ मगनमलजी योग्य वर की तलाश करने लगे। तलाश, खोज आवश्यक थी क्योंकि हर किसी के हाथ में कन्या सौंपी नहीं जा सकती थी। लड़की कोई गाजर मूली नहीं जो किसी के भी हाथ में थमा दी जाय। अनुकूल घर व वर को देखकर दाखी का मांडोली के श्रीमंत परिवार में पन्नालालजी पुणोत के साथ सम्बन्ध कर दिया गया। बालक पन्नालाल की बलिष्ठ देह, सौष्ठव शरीर व तेजस्विता के साथ सुन्दरी, सौम्या, सुशीला शुभ लक्षणी बाला दाखी का सम्बन्ध ने सोने में सुहागे का काम किया। छोटी-सी दाखी को गहनों, आभूषणों से लाद दिया गया। सर्वत्र धूमधाम व हर्ष की लहरें दौड़ गई। गीत गान, मंगलाचार गाये जाने लगे। नन्ही दाखी यह कौतुक देख रही थी। पर उसे इसमें विशेष आकर्षण न था। गहनों को लाद कर भी उसमें खुशी की विशेष मुद्रा दिखाई नहीं दे रही थी।

□□□

२

अम्मा ! आजकल आपके व्यवहार में यह परिवर्तन क्यों ? पहले तो आप मुझे इतना प्यार करती थीं, इतना लाड़ करती थीं, अब वह सभी कहाँ चला गया ? मां, क्या तेरी ममता का स्रोत सूख गया।

नन्हीं दाखी पिताजी की मृत्यु के बाद अम्मा को प्रसन्न रखने का भरसक प्रयास करती। अपनी प्यारी मीठी वाणी से सभी को अपनी तरफ आकर्षित करके हँसाती रहती थी। सेठ मगनमलजी अपने जवान पुत्र की मृत्यु से शोक मग्न हो गये थे। सारे घर में मातम छा गया। कुहराम मच गया था। क्यों न हो भला। गमी के दिन जो थे। जो भी आता सान्त्वना देता किन्तु सान्त्वनाओं से क्या हो सकता था, गया व्यक्ति तो वापिस आ नहीं सकता था।

कुछ समय व्यतीत हुआ कि आघात पर पुनः आघात हुआ।

दासी के ताऊजी चुन्नीलाल भी अपने लघु भ्राता की राह पर चल पड़े। सेठ मगनमलजी के तो दोनों हाथ ही टूट गये। हृदय पर पुनः वज्रपात हुआ। सारा परिवार सिहर उठा। एक साथ दो जवान मौतें। दोनों युवती पुत्र-वधुओं को वैधव्य। अनुज की मृत्यु के पश्चात् मगनमलजी की प्रसन्नता ही चली गई। हर समय चेहरे पर उदासीनता छाई रहती। क्या विधि ने उन्हें भावी संकेत दे दिया था? सेठ मगनमल के वृद्ध कंधों पर परिवार का भार आ गया। स्वयं का दुःख, तिस पर पुत्रवधुओं की वेदना, असह्य हो गया— जीवन। दुर्भाग्य से इधर दोनों पुत्रियों ने भी वैधव्य को प्राप्त किया। सेठजी का जीवन मृत प्रायः हो गया। मौत की मार ने परिवार की कमर ही तोड़ डाली। ओह! विधाता को क्या मेरे परिवार के साथ ही यह खिलवाड़ करना था। इस नन्ही मासूम बालिका ने क्या बिगाड़ा था जो पितृ वात्सल्य का साया सिर पर से उठ गया? सारा घर मरघट के सदृश प्रतीत होने लगा। गमगीन वातावरण सर्वत्र दिखाई देने लगा। कौन किसको ढाढस बंधाये। सभी के ऊपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा था? कौन किसके दुःख बँटाने में सहयोगी होवे। अपने गम को भुलाने से किसको फुर्सत थी?

दासी शून्य प्रायः नेत्रों से सब तरफ देखा करती किन्तु उसका साहस न होता किसी से बोलने का। जब भी किसी के पास जाती, दासी को देख वह और रो पड़ता। उस मासूम बालिका को देख सभी का हृदय द्रवित हो उठता। आह! विधाता ने इसके साथ क्या खिलवाड़ किया।

जन्म के समय जहाँ हर प्राणी आनन्दित हो उठता, खुशी हृदय में नहीं समाती, वहीं मृत्यु पर दुःख के बादल मंडराने लग जाते हैं। प्रसन्नता शोक में परिवर्तित हो जाती है। हर्ष में थिरकता मन

मयूर निष्प्राण सा हो जाता है। किन्तु यह किसी के हाथ की बात नहीं। जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख, हर्ष-शोक, धूप-छांव ये द्वन्द्व जीवन के पहलू बनकर मानव के साथ खेल खेलते रहते हैं।

दाखी का नन्हा मस्तिष्क विचारों की गुत्थियों में उलझने लगा जीवन और मृत्यु का यह चक्र भला कब तक ? क्या जन्म के पश्चात् मृत्य निश्चित है ? मौत को टाल सकना किसी के हाथ की बात नहीं। प्रश्न पर प्रश्न मनोमस्तिष्क पर छा जाते किन्तु भला छोटा दिमाग उनको कैसे सुलझा सकता। किसको कहें और समाधान मिले। घर का शोकमय वातावरण, प्रत्येक व्यक्ति रोने धोने में लगा रहता। दाखी एकान्त में बैठी इन्हीं गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करती। न रोना न धोना, न किसी से अधिक बोलना। उदासीनता के साथ, गमगीन, वातावरण में एकान्त उसे प्रिय लगने लगा। चिन्तन में ही समय व्यतीत होने लगा। दु खमय वातावरण बदलने लगा। मरने वाले व्यक्ति को कौन कितने दिन याद रखेगा। शनैः शनैः स्मृतियां स्वतः ही धूमिल होने लग जाती हैं। हवेलियां भी जब उजड़ जाती हैं तो शनैः शनैः खण्डहर-अवशेष रह जाते हैं। परिवर्तन का नाम ही संसार है। दुःख के बादल धीरे धीरे छँटने लगे। वातावरण समतल हो गया।

इधर रूपादेवी को अपना जीवन नीरस लगने लगा। सुख चैन सब विधाता के क्रूर हाथों ने छीन लिया। खिलता चमन, मुस्कराती बहारें व्यतीत हो गयीं। उन्होंने अपना रुख बदल लिया। मांग का सिन्दूर दुःख की गहरी पर्तों ने धो डाला। सहसा ही विचारों में परिवर्तन हुआ। यह जीवन जिसे समर्पित था, वही जब चला गया तो इस झमेले से मुझे क्या प्रयोजन ? यह संसार, यह परिवार, ये रिश्ते नाते, सब जीते जागते का मेला है। अब यह जीवन अपनी आत्म साधना में लगे तो कर्म पुद्गल नष्ट हो जावें। यह कर्म ही तो प्रधान हैं, इन्हें किसी की शर्म

नहीं। राजा-महाराजा हो या संत महात्मा सभी को इन कर्मों की मार खानी पड़ती है। जिसने इन कर्मों को भस्मीभूत कर दिया, संसार समुद्र को पार कर लिया, उसी ने शाश्वत सुख को वरण किया। कोई सुयोग्य अच्छे संत का समागम मिले तो मैं भी अपनी आत्मा का उद्धार करूं। यह जीवन सफल हो जाय। पर यह कब होवे ? इस दु ख से कैसे छुटकारा मिले ? जब तक दाखी के हाथ पीले नही होंगे तब तक मुझे मुक्ति नहीं। अब जल्दी से जल्दी इसका लग्न हो जावे तो मैं भी इस ओर कदम बढ़ाऊं।

एक दिन रूपादेवी ने दाखी से कहा दाखी, अब तो मैं चाहती हूँ कि अब शीघ्र ही तेरा विवाह हो जाय तो मैं मुक्त हो जाऊँ। दाखी सोचने लगी मेरे विवाह के साथ मुक्त होने का क्या संबंध है ? मैं क्या बंधन हूं मां के लिये ? दाखी मां से पूछ ही बैठी—'मां' क्या मै आपके लिए बंधन हूँ किस रूप से बंधन हूं ? और विवाह के बाद तुम किस प्रकार मुक्त हो जावोगी ? धीरे धीरे दाखी को समझाते हुए मां रूपादेवी बोली—बेटी अब मेरा इस घर में जरा भी मन नहीं लगता। जब से तेरे पिता इस संसार से विदा हुए हैं तब से यह मन इस घर को छोड़ने के लिए उतारू हो रहा है, यह मन इन भोगों से विरक्त हो रहा है। इस घर में रहना रुचिकर नहीं। कब जाकर मैं अपनी बहिन महाराज के पास संयम अंगीकार करूं यही इच्छा है। यह कामना तभी पूरी होगी जब तेरा विवाह सम्पन्न हो जावेगा। उससे पहले यह कार्य कैसे बने ?

'मां' ! आपकी बहन महाराज कौनसी हैं ? आज से पूर्व कभी इन गुरु महाराज की चर्चा तक भी नहीं की और न ही कभी आप दर्शनार्थ गए। क्या उनके दर्शनों की तमन्ना नही हुई।'

'बेटा ! घर गृहस्थी का चक्र ही ऐसा है। लाख प्रयत्न करने के बावजूद भी दर्शन का लाभ नहीं मिल सका। और इन वर्षों में तो घर

की परिस्थिति कैसी हो रही है, यह तो तुम जानती ही हो। इस परिस्थिति में तो मुंह से चूं तक नहीं कर सकती थी। इच्छा तो वहुत करती है पर यह काम बने कैसे !

"मेरी प्यारी मां ! जव तुम उनके दर्शन करने जाना चाहती हो तो मैं स्वयं दादाजी से कहूंगी और अपन दोनों ही चले चलेंगे। आप चिन्ता भी न करें पर यह तो वताओ कि ये कौनसी मौसी महाराज हैं मेरी सगी मौसी हैं या अन्य रिश्ते में मौसी लगती हैं ?"

दाखी का वाक् चातुर्य देखकर मां दंग रह गयी, कितनी जिज्ञासा उत्कण्ठा रहती हैं हर विषय को जानने की। मां ने वेटी को अंक में ले लिया, सयाना सलौना मुख चूम लिया। जैसा नाम वैसा ही स्वभाव। भला अपने वच्चों के गुण, उत्तम स्वभाव देखकर किसको हर्ष नहीं होगा। पुलकित मन से माता बोली "वेटा! अच्छा तू जानना ही चहती है तो ले मैं तुझे वताती हूँ उन मौसी महाराज के विषय में। उनका नाम सुवर्ण श्री जी महाराज है। साथ ही उनको सोहन श्री जी महाराज भी कहते हैं।"

'मां तो मौसी महाराज के दर्शन करने आप कब चलेंगी ? अव तो वहुत ही इच्छा हो रही है दर्शन की। मां ने ढाढस बंधाया—बेटा ! उचित अवसर मैं स्वयं देख रही हूँ। तेरे दादाजी से कहने की हिम्मत नहीं होती। किस प्रकार यह कार्य होगा। धीरे-धीरे समय व्यतीत होने लगा। दाखी व मां उस दिन की प्रतीक्षा में थीं। राजस्थानी प्रथानुसार जव वेटी विधवा हो जाती है तो सर्वप्रथम पीहर से निमन्त्रण आने पर पीहर जाती है। पश्चात् अन्यत्र गमन कर सकती है। रूपा बाई को भी पीहर से निमन्त्रण आया। इसी वीच उन्होंने यह पता कर लिया कि आर्यारत्न सुवर्ण श्रीजी म. आजकल जयपुर विराजमान हैं। पीहर से

आने के पश्चात् आपने अपने श्वसुर सेठ मगनमलजी से निवेदन किया कि मैं बहन-महाराज के दर्शनार्थ जयपुर जाना चाहती हूं ।

सेठ मगनमलजी सोचने लगे कि आज तक जिसका नाम भी नहीं सुना, कभी चर्चा भी नहीं की, वह बहन कहाँ से आ गिरी ? संकल्प-विकल्प का तांता मस्तिष्क में उभरने लगा । महाराज के दर्शन, वह भी इस समय ? अवश्य इस समय कुछ न कुछ कारण, हेतु होना चाहिए । हर कार्य का कोई न कोई कारण अवश्य होता है । महाराज श्री के दर्शन निष्प्रयोजन नहीं हो सकते । कहीं दीक्षा-विचार तो इसके मनमें नहीं । ओफ ! इधर तो पुत्र छोड़ चला और कहीं यदि यह भी छोड़ चली तो । यदि न जाने दूं तो यह सोचेगी कि आज में आधारहीन हूं अब मेरा इस संसार में कौन ? विना पुत्र के पुत्रवधू की भावना पर कुठाराघात किस प्रकार करूं ? यदि जाने दूं और लौट कर न आवे ? पर यह भी संभव नहीं । मेरी अनुमति के बिना कुछ भी नहीं हो सकता । कहीं दीक्षा का बखेड़ा तो उठा नहीं लावेगी । सेठजी बड़े पशोपेश में पड़ गए । समझ में नहीं आया कि क्या करें और क्या न करें आखिर मजबूर होकर उन्हें तुरन्त वापिस आने की स्वीकृति लेकर जयपुर जाने की अनुमति प्रदान की ।

जैसे ही मां को अनुमति मिली वैसे ही दाखी भी मचल उठी, मैं भी साथ में चलूंगी । उत्कण्ठा तो मनमें थी ही मोसी के दर्शन की । दादाजी के पास जाकर निवेदन किया मुझे भी मां के साथ जाना है मोसी महाराज के पास । आप अनुमति प्रदान करो । दादाजी मना भी कैसे करते । आखिर मजबूर होकर दाखी को भी जाने की आज्ञा प्रदान की गयी ।

दाखी का दिल बांसों उछलने लगा । मोसी महाराज के दर्शन करने का सौभाग्य मिलेगा । भावी जीवन के लक्षण प्रगट होने लगे ।

दादाजी पुत्रवधू और पौत्री दोनों को विदाकर थके हारे घर पर आए, घर तो मानो काटने को दौड़ रहा था। दाखी बिना सर्वत्र सूना-सूना लग रहा था।

इधर दाखी उपाश्रय की ओर कदम बढ़ाने लगी। वहां पहुंचकर मौसी महाराज के चरणों से लिपट गयी; मानों कोई पूर्व संस्कार प्रगट हो रहे थे। चिरपरिचिता की भांति बिना लज्जा, संकोच के स्पष्ट रूप से बातें करने लगी। दाखी की मीठी–मीठी वाणी में ऐसा आकर्षण था कि सारा साध्वी वृंद एकत्रित हो गया। उसकी चतुराई पूर्ण वार्ता को सभी तन्मय होकर सुनने लगे। दो ही दिन में दाखी सभी से इस प्रकार घुल मिल गई मानो वह भी इस श्रमणी परिवार की एक सदस्या हो। साध्वी जी को पंडित जी पढ़ाने आते तो दाखी सर्वप्रथम तैयार मिलती। बुद्धि तीव्र थी। बुद्धि की तीव्रता के साथ जिज्ञासा प्रबल रहती। हर विषय को इस प्रकार एकाग्र चित्त से सुनती मानो सभी कुछ उसे ही पढ़ाया जा रहा हो।

दो महीने का समय तो बातों में ही निकल गया। पूज्य सुवर्ण श्री महाराज द्वारा स्थापित श्री जैन पाठशाला में दाखी अध्ययन के लिए जाती। इसी बीच उसने कन्या बोधिनी के दो भाग समाप्त कर लिये। दाखी की कुशल बुद्धी की सभी ने सराहना की।

दादाजी सेठ मगनमल के पत्र पर पत्र बुलाने के लिए आने लगे ताऊजी के भी पत्र आने लगे। जो आता है सो जाता जरूर है यह सोच कर मां रूपाबाई जाने की तैयारियां करने लगी। दाखी का हाल बेहाल हो गया। यह शान्ति यह आनन्द छोड़कर जाना पड़ेगा। उसका मन किञ्चित मात्र भी नहीं कर रहा था। दाखी ने मां से निवेदन किया "मां यदि आप मुझे मौसी महाराज के पास छोड़ जाओगी तो अति महरबानी होगी। मेरा मन घर जाने को नहीं कर रहा।" किन्तु मां ने कहा कि तेरे

दादाजी को क्या जवाब दूंगी । मुख दिखाने लायक भी नहीं रहूंगी । तुझे साथ चलना ही होगा । लाचार दाखी ने अपनी चाल बुद्धि का सहारा लिया । सायंकाल हो आलमारी के नीचे जा छिपी । सभी खोजते-खोजते परेशान पर दाखी कहीं दिखाई नहीं दी । रात्रि में जब बाल साध्वियां अध्ययन करके संथारे की (निद्रा की) तैयारी करने लगीं तब दाखी के पैरों को हाथ लगा । दाखी की बुद्धि कामयाब न हो सकी उसकी चोरी पकड़ी गई । अन्ततः वह सुवर्ण श्रीजी महाराज के चरणों में लिपट गई और रो-रो कर अनुनय करने लगी "मौसी महाराज मुझे यहीं पर रख लीजिए मेरा मन यहां से जाने को नहीं करता, मैं आपके पास ही रह लूंगी" ।

तब सुवर्ण श्री जी ने रूपा बाई से कहा यदि यह नहीं जाना चाहती तो यहीं रह लेने दो। जब इसका मन नहीं लगेगा तब हम अच्छा साथ देखकर भिजवा देंगे । तुम चिन्ता न करना ।

रूपा बाई महाराज के सम्मुख कुछ बोल नहीं सकी । न हां कहा और न ही ना । इधर दाखी खुशियों में नाचने लगी । भय से रूपा बाई का दिल धड़कने लगा । श्वसुर जी को क्या जवाब दूंगी । पर लाचार हो जाने को उद्यत हुई । तांगा आगया, बासाब मां को पहुँचाने जाने वाले थे । दाखी मां को दरवाजे तक पहुँचाने गयी तब बासाब ने कहा —आजा दाखी मां को स्टेशन पहुँचा कर आ जावेंगे । दाखी मां की इस चाल में फंस गई । बासाब तो मां को पहुँचाने ही जा रहे थे उसे क्या पता था । रोती-पीटती दाखी पीपाड़ जा पहुँची ।

□ □ □

आगरा के पाट पर जैसे ही सुवर्ण श्री जी म. सा. का प्रवचन समाप्त होता कि दाखी पाट पर जा बैठती और प्रवचन की पुनरावृत्ति करने लगती। सभी इसे बाल चेष्टा समझ कर मनोविनोद करते पर साथ ही उसकी वाक् शैली पर अचम्भा भी करते। यह नन्ही बालिका इस उम्र में इस प्रकार प्रवचन दे सकती है, व्याख्यान दे सकती है, सभी को आश्चर्य होता। किन्तु भविष्यद्दृष्टा तो कोई न था। किसी को क्या पता था यह ही इस पाट की उत्तराधिकारी होगी। बाललीला ही स्वरूपलीला सिद्ध होगी यह किसी को विदित न था।

इधर तप त्याग और अध्यात्मरस में निमग्ना पू. सुवर्ण श्री जी म. सा. का वाणी रूपी अमृतमेघ अनवरत बरसता। उनकी अध्यात्मरस पूर्ण वाणी, आत्माज्ञान की साधना का प्रभाव वायुमण्डल पर पड़ता। दाखी पर भी उस वातावरण की छाप पड़े बिना न रह सकी। निश्चय कर लिया कि वाग्दान हुआ सो हुआ अब पाणिग्रहण नहीं करना है।

लोष्ठ खण्ड भी पारस मणि के संयोग से सुवर्ण हो जाता है, उसी प्रकार दाखी पर भी संग का रंग लग रहा था।

रूपाबाई सोचती, कहीं दाखी पर ये संस्कार अंकित न हो जायें अन्यथा श्वसुरजी का कोपभाजन बनना पड़ेगा। यह बाललीला संस्कार-रूप न ले ले। भय मन में हर समय समाया रहता। क्योंकि जिसके बिना घर सूना रहता, घर का प्रत्येक सदस्य जिसे सिर आंखों पर रखता उसे कौन छोड़ने के लिये तैयार हो सकता था? वे दाखी को कहतीं —दाखी! जब तक तेरी शादी नहीं हो जावेगी मेरे मनोरथ सफल नहीं हो सकेंगे—इस पर दाखी कहती—मां जिस डगर से तुम मुख मोड़ रही हो उस पर मुझे चलने को कह रही हो। यह कंटकाकीर्ण, पंकिल मार्ग है, और इसे निकृष्ट जघन्य समझ कर ही तो स्वयं छोड़ने को तैयार हुई हो और मुझे इस ज्वाला में झोंकने को तैयार हो रही हो। मां! मैं कदापि इसमें नहीं फंसने वाली मैं तो दीक्षा लूंगी।

कभी-कभी मां दाखी को गहने पहनने के लिए कहती तो दाखी तपाक से कह उठती मुझे गहनों से क्या लेना देना? जब मुझे यह बनना ही नहीं तो मैं क्यों पहनूं। तुम्ही इनको सम्भालो इनकी सुरक्षा करो।

आगरा में सुखमय समय व्यतीत होने लगा। दाखी के आने के पश्चात् अमरावती में ताऊजी की पुत्री मनोहर कुमारी का विवाह निश्चय होगया। रूपाबाई तो पहले ही पीपाड़ जा चुकी थी, दाखी को भी अमरावती पहुँचने का तार आया और साथ ही माता का संदेश भी मिला कि तुम तैयार रहना, मैं लेने को आ रही हूँ।

दाखी का चिन्तन चल पड़ा। ओह! मनोहर बाई और मेरी सगाई एक ही परिवार में हुई है। बरात में अभी सब आने वाले हैं।

और इस समय मेरा विवाह का निश्चय कर दिया तो ? या मेरा जबरन ही विवाह कर दिया तो मेरा वश चलने वाला है नहीं, उस समय तो मैं कुछ बोल भी नहीं सकूंगी। अतः मुझे अमरावती जाना ही नहीं। चाहे जो कुछ हो जावे मैं नहीं जाऊंगी। इस प्रकार दृढ़ संकल्प दाखी ने कर लिया। कुछ समय पश्चात् मां आई और बहुत कहा, समझाया चलने को पर मां की कुछ भी न चल पाई। दाखी नहीं गई सो नहीं गई।

रूपाबाई जानती थी अब वहाँ क्या जबाब दूंगी और दाखी भी जानती थी पर सोचा कि एक न एक दिन तो यह सब बनाव बनेगा ही। इधर रूपाबाई को जैसे ही दादाजी ने अकेले आए देखा तो बरस पड़े। दाखी कहाँ है ? तुम अकेली कैसे आई ? उसे वहाँ किसके भरोसे छोड़ आई ? अरे मैं तेरी नीयत भलीभांति समझ गया हूँ। मेरी स्वतन्त्रता का तुम लोग नाजायज फायदा उठा रही हो। शीघ्र बता दे दाखी कहाँ है ? मैंने तो यहां और ही प्रबन्ध कर रखा था। सोचा था साथ ही साथ उसके भी हाथ पीले कर दूंगा। पर तुम खुद जाओगी तो जावो मेरी बेटी को कहीं न ले जाना।

मोहाधीन दादाजी रो पड़े। क्या उपाय करूं ? किस प्रकार उसे अब बुलाया जाय ? उन्होनें दाखी को तार करवा दिया कि मां कि तबीयत बहुत खराब है शीघ्र चली आओ। साथ ही लिवाने को एक आदमी भेज दिया।

दाखी के पास तार आया और आदमी भी लिवाने को पहुँच गया। बोला—दाखी मां की तबियत बहुत खराब चल रही है। तुमको शीघ्र ही बुलाया है तैयार हो जाओ।

दाखी तुरन्त बोल उठी—इस प्रकार छलना से मुझे नहीं ले जा

सकते। मां की बीमारी तो सिर्फ एक बहानेबाजी है। जब मुझे विवाह करना ही नहीं तो फिर उसमें सम्मिलित भी क्यों होऊँ ?

तो वहां तुम्हारा विवाह कौन कर रहा है ? तुम चलो तो सही आगन्तुक ने कहा —नहीं मुझे नहीं चलना। वहां की गंध मुझे यहां तक आ रही है। उस मार्ग पर मुझे जाना ही नहीं है।

अरे दाखी मान तो सही। वहां जाकर सब कुछ देखा जाएगा।

दृढ़प्रतिज्ञ दाखी ने कहा—मैंने एक बार कह दिया सो कह दिया, मैं कदापि नहीं जाऊँगी। आप व्यर्थ अपना और मेरा समय खराब न करें। आप लौट जाइये। मैं तो नहीं चल सकूंगी। यहां पर सेठ लक्ष्मीचन्द उद्यापन करेंगे। प्रतिष्ठा महोत्सव भी होगा। इस मंगल-मय अवसर पर आचार्य प्रवर विजय धर्म सूरिश्वर जी म. सा का विद्वान शिष्य मण्डल विजेन्द्रसूरिजी म. आदि तथा पूज्य सुवर्ण श्री जी म.सा. का शिष्य समुदाय आवेगा। अनेक स्थानों से धर्म प्रभावना हेतु महानुभाव आवेंगे। यह पुण्य प्रसंग छोड़ कर मैं कैसे जा सकती हूँ ? विवाह कार्य तो हर हमेशा किसी न किसी के होता रहता है पर ये तो कभी कदाच ही हो पाते हैं। आप दादाजी को मेरा प्रणाम कहना और कहना कि महोत्सव के पश्चात् एक बार दाखी अमरावती अवश्य आवेगी।

हताश हो व्यक्ति चला गया। उसे आश्चर्य था—कैसी अनहोनी यह बालिका है, किस प्रकार मेरी बोलती बन्द कर दी गई ? मैं उसके समक्ष निर्बल हो गया। स्वयं न रोई, न जिद्द की, न चिल्लाई। यह कोई असाधारण मानवी नहीं अपितु कोई असाधारण व्यक्तित्व वाली है। ओह ! इसके दिव्य तेज के सामने कोई नजर भी नहीं उठा सकता।

अमरावती पहुँचने पर दादाजी ने उसे भी जब अकेला आया देखा तो उद्विग्न हो उठे—बोले दाखी कहां है रे ? तू उसे लिए बिना कैसे चला आया ?

लज्जा से मुँह नीचा किये उसने सब हकीकत कह सुनाई। तब दादाजी कहने लगे क्या बित्ती भर की बालिका तुझसे उठाई न गई। क्या मजाल की वह वहाँ रह जाय !

सेठ जी ! आप कहते हैं वह सही है। पर मेरा पौरुपत्व भी उस बालिका के सामने निर्बल पड़ गया। आप उठाने की बात कहते हैं, उसे तो छूना भी शक्य नहीं। वह असाधारण मानवी नहीं, वह तो मानो दुर्गा का अवतार है। मेरी वाणी भी उसके समक्ष मूक हो गई, मानों वह सरस्वती का स्वरूप है। आपकी मेरी किसी की ताकत नहीं जो उसे उठा सके। लगता है आपने उस देवी भवानी से वार्तालाप नहीं किया है। उसके तर्क ही अकाट्य हैं। वह वैराग्य रूपी ईंधन में तपा तपाया निखालिस स्वर्ण है। उसे अपने निश्चय से डिगाने में किसी का सामर्थ्य नहीं। दादाजी निराशा से हाथ मलते रह गए।

कुछ समय पश्चात् रूपाबाई अपने भाणजे, बहन सुगनीबाई के द्वितीय पुत्र, प्रेमराज के विवाहोपलक्ष्य में अहमदनगर गई। दाखी को बुलाने के लिए फिर पत्र पर पत्र आने लगे। प्रतिष्ठा महोत्सव भी विराम ले चुका था। दाखी ने सोचा अब तो जाना ही ठीक रहेगा। ऐसा सोचकर दाखी आगरा के सेठ लक्ष्मीचन्द के साथ बम्बई आ गई। वहाँ से सिंघी जी के मुनीम के साथ अहमदनगर गई। उस विवाह में उसके लिए कोई विघ्न उपस्थित होने वाला था नहीं—विवाह कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। मौसा जी मुलतानमलजी दाखी की दीक्षा के विरोध में थे। वे दाखी को बहुत समझाते। आखिर उन को ही निरुत्तर होना पड़ता। वे भी उसकी प्रबल भावना को कम न कर सके। उनका एक

ज्योतिषी से अच्छा सम्बन्ध था। वे मां और बेटी को उनके पास ले गए और भविष्य पूछा। ज्योतिषी ने दाखी के लिए कहा कि इस बालिका का जन्म ही संन्यास के लिए हुआ है। यह तो जोगिन ही बनेगी, भोगिन कभी नहीं बन सकती। इसका विवाह किसी हालत में संभव नहीं।

माता—पुत्री कुछ दिन पश्चात् अमरावती आ गयी। ताई जी के हर्ष हिये न समा रहा था। दाखी सभी के नयनों का तारा थी। मस्तक का मौर थी। उन्होंने दाखी को उलाहना देते हुए कहा—बेटी अहमदनगर भी तो वही विवाह था। दो महीने पहले यहां आ जाती तो मेरा भी मन प्रसन्न हो जाता। दाखी बड़ी मां को मनाते हुए चरणों में सिर रख बोली—मां सच कहूँ, मेरा यहां न आना निष्प्रयोजन न था। यहाँ मुझे मेरे विवाह की गंध आ रही थी अतः मैं नहीं आई। अब मैं आपसे दीक्षा की आज्ञा लेने आई हूँ। आप तो आज्ञा प्रदान करें। दीक्षा की बात तो विरलों को ही जँचती है। अतः बड़ी मां ने बात आई गई कर दी।

सावन का महीना, बागों में झूले डलने लगे। सखियां हिलमिल खिलखिलाती झूला झूलने जाने लगीं। बड़ी मां ने दाखी से कहा—जा तू भी बाग में सखियों के साथ जा। सारा दिन जाने क्या क्या पढ़ती रहती है। मन भी नहीं लगता होगा। ले यह गहने, कब से तूने इनको हाथ भी नहीं लगाया। पहले तो तू बड़ी लगन के साथ इनको पहनती थी, पहनने के लिए मचल उठती थी पर अब तो इनकी ओर देखती तक नहीं। कभी माला फेरती है, तो कभी पढ़ती रहती है। कभी आंख मूंदकर बैठ जाती है, न जाने क्या क्या सोचती रहती है। सारा दिन सामायिक सामायिक की रटन लगी रहती है। अरे सारी जिन्दगी पड़ी है यह धर्म कर्म करने को। अभी यह उम्र तो खाने पीने मौज शौक करने की है और न जाने तू क्या क्या करती रहती है?

दाखी मां के चरणों में लिपट गई। विनम्र स्वरों में कहने लगी—अम्मा ! सच पूछो तो अब मेरी तनिक भी रुचि इन गहनों में नहीं रही। वे मुझे बेड़ी रूप लगते हैं। क्या बेड़ी पहनना कोई पसन्द करेगा ? अब आप इनको वापिस लौटा दें।

मां, झूला झूलने के लिए आप मुझे कह रही हैं। मुझे आत्मरस के झूले झूलने हैं। इन झूलों में क्या रखा है ? जब धर्म की डोर पकड़कर ज्ञान रूपी पवन के हिंडोले खावें तब जो आनन्द आता है, वह वर्णनातीत है। मुझे पढ़ना, माला फेरना यह सब अच्छा लगता है। आप कहते हैं यह उम्र खाने, पीने, मौज शौक करने की है तो क्या मैं खाती पीती नहीं। रही बात मौज शौक की। तो "कोई काहू में मगन कोई काहू में मगन" किसी को बाग में झूलने का शौक तो किसी को उपाश्रय जाकर धर्म क्रियाएँ करना पसन्द है। अच्छा मां, यह बताओ क्या पुस्तकें पढ़ना, माला फेरना, सामायिक करना अच्छा कार्य नहीं है ? क्या मैं गलत कार्य कर रही हूँ ? आप क्यों बार बार इनके लिए निषेध करती हैं।

दाखी की ताई (बड़ी अम्मा) निःशब्द खड़ी दाखी के अकाट्य तर्कों को सुन रही थी। अपनी राजदुलारी बेटी कैसी-कैसी बातें कर रही है। सुनकर हर्ष होता पर मोहराजा के आश्रयभूत बनी आखों से अविरल अश्रुप्रवाह बहने लगता। इसकी बातों का तो उत्तर देना भी शक्य नहीं। यह तो हाजिरजवाब है। सभी को निरुत्तर कर देती है। उसकी इन बातों का क्या जवाब दें, वे स्वयं सोचने लग गई। आखिर खीज कर परेशानसी बोल उठी—बस जरा कुछ कहा नहीं कि उपदेश झाड़ने लगती है। छोटी सी है पर जबान तो देखो कितनी लम्बी है। बातें बनानी ही आती हैं। दो दिन महाराज के क्या जा आई, मानों स्वयं महाराज बन आई हो। किसी को कुछ गिनती ही नहीं। मानों धर्म कर्म क्या है, यह ही सब कुछ जानती है।

दाखी शांती मुद्रा में, उसी अवस्था में खड़ी सब कुछ सुनती है। मानो उससे नहीं किन्तु मां तो शरीर को कह रही हो क्योंकि इस शरीर पर ही तो इन सभी को मोह है। उसने मां से अपना रुख बदल लिया।

कुछ दिन अमरावती रह कर मां वेटी जतन श्री जी महाराज साहब के दर्शन कर पीपड़ा आ गयी। हमेशा दाखी को नजरों के सम्मुख रखने वाले दादाजी दाखी से नजर चुराने लगे। कहीं दाखी दीक्षा का प्रसंग न छेड़ दे इसी कर्णशूल शंका से दादाजी दाखी से दूर दूर रहते। रूपावाई भी परेशान थी। इस झमेले में वे स्वयं दुविधा में पड़ गईं। क्या किया जाय। न इसकी हां होती है और न ना। कैसे क्या करूं? इसके पीछे मैं कब तक पड़ी रहूँगी। यह अच्छी आफत सिर पर सवार हो गई। इसकी शादी के बाद ही बात छेड़ती तो अच्छा रहता। हर व्यक्ति अपना ही स्वार्थ सोचता है। पर जैसी होनहार होती है वह होकर रहती है। किसमें ताकत है उसे टालने की। कितने दिन तक यह अवस्था बनी रहेगी। आखिर एक दिन दृढ़ निश्चय करके साहस एकत्रित कर रूपावाई ने श्वसुर के समक्ष दोनों की ही दीक्षा का प्रसंग छेड़ दिया, जो सोचा था वही हुआ। सारे घर में हंगामा खड़ा हो गया। हलचल मच गई, रोना धोना प्रारम्भ हो गया। स्नेही सबंधी आकर समझाने लगे।

जिसके जो मनमें आता बोल जाता, कोई कुछ कहता कोई कुछ। सभी यह कहते दादाजी को निःसहाय छोड़ना उचित नहीं। और तुम दीक्षा ले लो तो कोई बात नहीं, पर इस छोटी कचनार की सी कली को क्यों साथ ले जा रही हो? दाखी भी अपनी तेजस्विता से मूक बना देती। लोग डराने धमकाने आते कि कुछ समय का रंग है। डराने धमकाने से धुल कर उतर जाएगा। पर यह दृढ़ निश्चय मजीठ का रंग

था जो कि इस वातावरण में और मजबूत पक्का हो रहा था।

घर में मायूसी का वातावरण बना रहता। दादाजी भांति-भांति दाखी को समझाते। संयम के दुष्कर मार्ग को बताने का प्रयत्न करते। ओह कितना कष्ट होता है। ये सुन्दर बाल हाथ से खींच-खींच कर उखाड़ने पड़ते हैं। ग्रीष्म ऋतु में गर्मी की व्याकुलता, तो शीत ऋतु में ठंड की ठिठुरन। ठंडा खाना खाना पड़ेगा। अनुकूल भोज्य पदार्थ मिलें भी न भी मिलें। बेटी यह कैसे सहन कर सकोगी ?

किन्तु दाखी कब डिगने वाली थी। वह दादाजी को अपने वाक् चातुर्य से मूक बना देती। कभी-कभी दादाजी कह उठते देख दाखी हठ छोड़ दे। कहीं तेरा यह गृह त्याग मेरा देह त्याग न हो जावे। तेरा संयम मेरे प्राणों की बाजी न होजावे। पर दाखी ने तो मानो कर्म सिद्धान्त पढ़ लिया था। मृत्यु आमन्त्रण देने पर थोड़े ही आती है।

दादा-पोती दोनों ही अपनी अपनी टेक पर टिके थे। समाज ने भी दोनों को समझाना प्रारम्भ किया। आखिर सत्संकल्प के आगे मिथ्या मोह की न चल पाई। दादाजी को घुटने टेकने पड़े और अन्ततः दुःखी हृदय से अनुमति प्रदान करनी पड़ी। दाखी और रूपाबाई के आनन्द का क्या पूछना। मायूसी खुशी में बदल गई। गमगीन वातावरण हर्ष-मय बन गया।

सभी के सम्मुख यह प्रश्न था कि दाखी का सम्बन्ध विच्छेद कैसे किया जाय। वाग्दान के समय उसकी ससुराल से जो आभूषण आये थे उनको लौटाया कैसे जावे। किस प्रकार उनको कहलाया जावे। आखिर-कार हिंगनघाट मांडोरी ससुराल वालों को समाचार देकर बुलाया गया और बड़ी मुश्किल से गहने इस शर्त पर लौटाये गए कि यदि किसी

कारणवशात् दाखी की दीक्षा नहीं हुई तो विवाह अन्यत्र नहीं होगा। चार साल रखे गहने लौटाकर सभी चिन्ता मुक्त बने।

अब कुछ दिन पश्चात् सभी परिजनों के साथ समय व्यतीत कर मां-बेटी दोनों जोधपुर में विराजित जतन श्रीजी म. सा. के दर्शन कर पीपाड़ गई और आग्रह कर उनसे पीपाड़ आने की स्वीकृति ले ली। पश्चात् दोनों ने आगरा पूज्या सुवर्ण श्रीजी म. सा. के पास आकर दीक्षा का प्रस्ताव रखा। अभी तक सभी साध्वियाँ इसे गुड्डे-गुड्डियों का खेल समझ रही थीं पर दीक्षा के प्रस्ताव ने उन्हें विस्मय में डाल दिया। सुवर्ण श्रीजी महाराज ने दाखी को समझाना प्रारम्भ किया— दीक्षा दीक्षा कर रही है पर जानती भी है कि दीक्षा क्या होती है? कितने कष्ट झेलने पड़ते हैं दीक्षा लेने के बाद? ये टीली टमके सब कुछ कहां से आवेंगे? अरे ये सुन्दर बाल हाथ से उखाड़ने पड़ेंगे।

इतना सुनना था कि तपाक से दाखी ने सिर से केश राशि में से चिमटी भर केश उखाड़ डाले और कहने लगी—पूज्य श्री इस तरह अन्य सभी कष्ट सहलूँगी।

इस पर प्रवर्तिनी जी फिर कहने लगे—अरे तेरे दादाजी कहां तुझे छोड़ने वाले हैं। वे किसी हालत में तुझे त्यागने को तैयार नहीं होंगे। पर दाखी के पास तो हर सवाल का जवाब था बोल उठी महाराज श्री आप श्री के सम्मुख प्रस्ताव आज्ञा प्राप्त करने पश्चात् ही लाई हूँ। दाखी का तेज, उत्साह और उल्लास देखकर सभी दंग रह गए। यह नन्ही बालिका आज्ञा भी प्राप्त करके आ गई।

पूज्य सुवर्ण श्रीजी म. सा. की भावना दाखी को दीक्षा प्रदान कर संयमी बनानी की नहीं अपितु उपदेशिका बनाने की थी। वे जानती

थी कि इस समय यह युग उपदेशिका की मांग कर रहा है। पर वह समय कुछ और ही था। बालिका कुमारिका ही रहे यह तो कदापि सभव नहीं हो सकता था अन्ततः वहाँ विराजित यतिवर्य विद्वद्रत्न राज-ज्योतिषी चतुर सागर जी से दीक्षा का मुहूर्त निकलवाया और अक्षय-तृतीया का सर्वमान्य शुभ मुहुर्त दीक्षार्थ घोषित हुआ। पूज्य श्री ने साध्वी मंडल से विचार विमर्श करके दीक्षा हेतु जोधपुर से जतन श्रीजी महाराज को और फलोदी पधार रहे ज्ञान श्रीजी म. एवं उपयोग श्रीजी म. को पीपाड़ की ओर प्रयास करने की अनुमति प्रदान कर दी।

पर दीक्षा के अवसर पर किसी प्रकार का विघ्न भी आ सकता है इसकी किसी को कल्पना न थी।

दाखी अडिग स्वर में बोल उठी—ठाकुर साहब ! आपकी न्याय वेदिका ने यही आदेश दिया है तो आप यही कीजिए। अपने त्याग, अपने सिद्धान्त अपने आदर्श पर मरने वाला तो अमर हो जाता है। मरना तो एक दिन आप हम सब को है ही, फिर इससे भय क्यों करना ?

ठाकुर साहब आश्चर्याभिभूत बने तप-त्याग से प्रज्ज्वलित दीप-शिखा को निहार रहे थे। विचारने लगे—मैंने इसे हर प्रकार से डराया धमकाया, समझाया बुझाया पर यह जरा भी तो चलायमान नहीं होती !

जब सेठ मगनमल ने पंचायत में फरियाद की कि उनकी नाबालिग पौत्री को बहका कर संन्यास दिलाया जा रहा है, साध्वी बनाया जा रहा है तो पंचायत बैठी। उस समय आज की भांति लड़ाई–झगड़ों के निपटारे के लिए कोर्ट–कचहरी में लोग नहीं जाते थे। वह युग पंचायतों का युग था, जहाँ न्यायाधीश ठाकुर होते थे। वे जो न्याय कर देते, सर्वमान्य होता था। ठाकुर के समक्ष प्रथम बार ही इस प्रकार का मामला (केस) दर्ज हुआ था। उसके सामने प्राय: सुख, सम्पत्ति, जमीन, जोरू, धन-धरा, रूप-रुपैये आदि के मामले ही पेश होते थे। पर यह तो विचित्र मामला था कि एक नन्ही सी बालिका आधुनिक भौतिक सुख साधनों की आकर्षक दुनिया का त्याग कर रही है। क्या ये सब इसे पसंद नहीं ? आभूषण इसे प्रिय नहीं ? क्या यह उम्र वैभव-विलास से पराङ्मुख होने की है ?

लगता है यह साधारण मानवी नहीं है। देवलोक से चल कर आई है। मैंने अधिकांश युगपुरुषों का जीवनचरित्र सुना व पढ़ा है वे सभी बाल्यकाल में ही संन्यासी हुए हैं। लगता है यह बालिका भी इस धरा पर धर्म ध्वज फहराने आई है। धर्म का डंका बजाने

आई है। विचारों ने फिर मोड़ लिया। पर मेरे पास तो फरियाद हुई है कि इसे वहका कर संन्यास दिलाया जा रहा है। मुझे न्याय करना है। पर बिना उसे देखे ही न जाने क्यों मेरा मन श्रद्धा से भर उठा है। उस देवांशी बालिका का त्याग मुझे आकर्षित कर रहा है, मुझे उसकी परीक्षा लेनी होगी। सोना कसौटी पर कसे जाने पर और अधिक निखरता है, उसी भांति यदि इसका तप त्याग मेरे द्वारा परीक्षित होकर और अधिक निखरेगा तो मैं उसका सहायक बनूंगा।

उस समय निम्बाज में पंचायत बैठती थी। दादा के अपील करने पर कि मेरी नाबालिग बेटी को साध्वियाँ बहका कर संन्यास दे रही हैं तो निर्धारित अवधि पर निम्बाज से बुलावा आया।

इधर दादाजी फूले न समाते थे, क्योंकि उन्होंने अपना मामला राज्याश्रय में दाखिल करा दिया। किन्तु चिन्तित थी रूपाबाई, आशंकित थे पीपाड़ के नर-नारी। अब क्या होगा? दाखी संन्यास ले सकेगी या नहीं? राज्य की ओर से क्या फैसला होगा? सभी दादाजी को समझा-समझा कर हार चुके थे। सेठ मगनमलजी सभी को फटकार देते हुए यही कहते—निकालकर दो अपने कलेजों के टुकड़ों को। क्यों मेरी बेटी पर ही आँख लगा रखी है? ज्यादा करोगे तो अफीम की पुड़िया खाकर सो रहूँगा। तब तो सभी को शांति हो जावेगी ना? दीक्षा-दीक्षा की रट लगा रखी है। चले जाओ यहाँ से अपने-अपने घरों में। समाज का यदि कोई भी बच्चा या पुरुष मुझे उपदेश देने आवेगा तो मुझसे बुरा कोई न होगा। संघ अपना सा मुँह लेकर चला जाता। वे सोचते—पहले ही दाखी मान जाती तो क्यों मुझे यह राज्याश्रय लेना पड़ता। पर क्या करूँ, आखिर लाचार होकर यह कदम उठाना ही पड़ा। मैंने क्या-क्या नहीं किया इसके साथ? तलघर में बंद करके इसे रख दिया। वहाँ दो-तीन दिन भूखी

ओफ ! आज तक भोग विलास की शिकायतें लेकर अभिभावक संरक्षक आते थे। पर सुख सुविधा भोग, वैभव ऐश्वर्य को लात मार कर, ठुकरा कर जाने वाली बालिका को रोकने के प्रयत्न में सहायक बनने की अभिभावक की प्रार्थना आश्चर्यजनक थी। हो सकता है इसे किसी ने भरमाया होगा। ठाकुर ने दाखी से कहा—क्या तू संयम ले रही है ? संन्यास ग्रहण कर रही है ?

जी हाँ !

तुझे यह किसने कहा ?

अपनी अन्तर प्रेरणा ने ?

किन्तु क्या माता-पिता, गुरुजनों का कहना मानना धर्म नहीं ? उनकी आज्ञानुसार चलना, यह तेरा कर्तव्य नहीं ? तुझे उनका कहना मानना ही होगा।

ठाकुर साहब, आप कहते हैं वह सही है। उनकी आज्ञा माननी चाहिये। किन्तु यदि उनकी आज्ञा से आत्मा का अहित होता है, आत्मा का पतन होता हो तो उसका प्रतिकार करना भी धर्म है, कर्त्तव्य है। उनकी इच्छा विवाह की है, पर मेरी नहीं।

तुम संसार को क्या जानो। जब जानोगी तो फिर पछताओगी।

यह कैसे हो सकता है— मैंने खूब सोचा है। संसार को भी जाना है, समझा है, तभी तो उसमें हाथ डालना नहीं रुचता।

तू संन्यास के विषय में क्या जानती है ? संन्यास क्या होता है ?

ठाकुर साहब, किसी वस्तु को जाने बिना उस तरफ अत्यधिक आकर्षण नहीं होता। मैंने खूब मनोमन्थन करने के पश्चात् ही यह निर्णय लिया है।

ठीक है, यदि संयम लेने के बाद पुनः विवाह करने की इच्छा हो जावे तो ?

ठाकुर साहब आप यह क्या फरमाते हैं ? जिस मंजिल पर जाना ही न हो उसकी डगर पर कैसे चला जा सकता है ? क्या आकाश महल पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बन सकती हैं ? मेरे अन्तर में विवाह की तनिक भी लालसा नहीं, अन्यथा विवाह तो सम्मुख ही हाथ पसारे खड़ा है। दादाजी ने और किसके लिए हाय तौबा कर आपका आश्रय लिया है। विवाह की लालसा रहे, इच्छा रहे तो कोई मुझे संयम के लिए बाध्य तो नहीं कर रहा। फिर अन्तर में अतृप्त लालसा ही तो तृप्त होने के लिए उभरती है। जब लालसा ही नहीं तो अतृप्ति का प्रश्न ही कहाँ ?

ठाकुर बालिका की हाजिरजवाबी पर चकित थे। क्या सरस्वती ने स्वयं इसके कंठों में निवास किया है ? क्या सुन्दर भाषा शैली है इसकी ? सच में यह बालिका संसार का मार्ग-दर्शन कर सकती है। भवाटवी में भटकते राहगीरों को मार्ग प्रदर्शन दे सकती है। मैं इसकी जितनी परीक्षा लेता हूँ, उतनी ही इस पर मेरी श्रद्धा बढ़ती जाती है। इसके दादा सेठ मगनमलजी व्यर्थ में व्यामोह में पड़ कर इसे रोक रहे हैं। दुनिया की कोई ताकत नहीं जो इसे रोक सके। फिर भी एक प्रश्न और करके देखूँ।

दाखी ! जरूर तुझे किसी ने भड़काया है, भरमाया है, बहकाया है, तभी तो तू संयम लेने को तैयार हुई है।

दाखी बोल उठी—आपकी यह धारणा मिथ्या है। मुझे न किसी ने भरमाया है, न बहकाया है। आप ही देखिये, दादाजी ने दोनों पुत्रों का स्वयं अपने हाथों से दाह संस्कार किया। दोनों फूफाजी गए। फूलबाई तो विवाह के भाँवरे में ही विधवा हो गई। क्या ये प्रमाण संसार की नश्वरता के लिए कम हैं? ससार में डगले पगले वैराग्योत्पादक दृश्य देखने को मिलते हैं। मैंने अपनी अन्तःप्रेरणा से ही संयम लेना स्वीकार किया है। मुझे उस मृत्युञ्जयी पति का वरण करना है, जो मुझे ससार के गर्त से, दुःखों से उबार सके।

विवाह के पश्चात् यदि विधवा हो गई—दु.खी हो गई तो क्या दादाजी इसका प्रतिकार कर सकते हैं? इस प्रकार के विषैले विषय भोगों में मुझे नहीं जाना। मुझे शाश्वत, अमर पति का वरण करना है।

ठाकुर साहब स्तब्ध थे। वे सोच रहे थे—यह कोई दिव्यात्मा है, महान् आत्मा है। अहिंसा का अमर संदेश देने इस धरा पर आई है। इसके लिए विघ्न डालना मानवीयता नहीं। मुझे स्वयं ही इस कार्य में सहयोग देना चाहिये। अवश्य ही यह जैन जगत् का जाज्वल्यमान नक्षत्र होगी। उन्होंने दाखी को ससम्मान विदा कर, निर्णय कल सुनाने पर छोड़ दिया।

इधर दादाजी ने तार द्वारा पौत्र फूलचन्दजी एवं जामाता धनराजजी को अमरावती से बुलवा लिया था। सभी मिलकर दाखी को समझा रहे थे। मां से मिलने पर भी प्रतिबंध लगा दिया था, तो फिर साध्वी महाराज के दर्शन का तो प्रश्न ही कहाँ?

इसके बावजूद भी दाखी निश्चल, शांत गम्भीर बनी रही। उसका उत्साह दुगुना हो गया। उसे विश्वास था कि सत्य पक्ष

कभी निर्बल नहीं हो सकता, सत्य की कभी पराजय नहीं हो सकती।

ठाकुर का भी इधर मनोमन्थन चल रहा था कि किसकी मदद करूँ ? दाखी की या दादाजी की ? न्याय पक्ष मेरे हाथ में है। उस तुला के आधार पर निर्णय करना मेरा कर्त्तव्य है। न्याय पक्ष तो दाखी का है, किन्तु दादाजी का क्या होगा ? उनके दिल को धक्का पहुँचेगा। उनकी गोद सूनी हो जावेगी। यह प्यारी सी सुन्दर सलोनी बेटी है. भला कोई भी कैसे छोड़ सकता है ? पर मैं भी क्या करूँ ? समझ में नहीं आता। अन्तर आवाज यही होती है कि दाखी का मार्ग प्रशस्त व उज्ज्वल है, अतः मुझे दाखी की सहायता करनी चाहिये।

दूसरे दिन न्यायालय का विशाल प्रांगण जनमेदिनी से ठसाठस भरा था। सभी यही सोच रहे थे कि यह बिजली किस पर गिरेगी ? निर्णय क्या होगा ? सभी की आंखें ठाकुर के चेहरे पर टिकी थीं। और ठाकुर के नेत्रों के समक्ष थी दाखी की सौम्य मुद्रा, उसके अकाट्य तर्क घूम रहे थे। उसके विचार उन्हें प्रभावित किए बिना नहीं रह सके। यकायक उन्होंने दृढ़ स्वरों में बोलना प्रारम्भ किया—दाखी को न किसी ने बहकाया है, न भरमाया है, न ललचाया है। यह अन्तर प्रेरणा से ही सत्पथ पर आरुढ़ हो रही है। मैंने सोचा था, यह सामान्य बालिका है पर अनुभव ने बताया है कि यह असामान्य बालिका है। स्वर्ग से यह देवी धर्म का डंका बजाने व आप हमको उद्बोधन देने आई है। इसे अपने निश्चल से कोई चलायमान नहीं कर सकता। इसका भविष्य उज्ज्वल है।

संन्यास के लिए वय की मर्यादा नहीं होती। उसके लिए योग्यता देखी जाती है। न्याय की कसौटी ने इसकी योग्यता को और

अधिक निखारा है। मेरा निर्णय यही है कि दाखी संयम के लिए सर्वथा योग्य है। और साथ ही दादाजी सेठ मगनमलजी से भी निवेदन है कि वे सहर्ष दीक्षा की अनुमति देकर उसे आत्माराधना, संयम साधना और शासन प्रभावना के लिए संघ को समर्पित कर दें।

प्रांगण दाखी के जय-जय से गूंज उठा। सत्य की विजय हुई। मोह पर अमोह की जीत हुई। भोग पर त्याग प्रतिष्ठित हुआ।

□ □ □

कसौटी पर कसने से जैसे स्वर्ण में चमक आ जाती है, पुष्प की सुगन्ध जैसे सभी दिशाओं को सुवासित कर देती है, सुहागे के संयोग से कुन्दन में और निखार आ जाता है, उसी प्रकार दाखी ने भी न्याय की वेदिका पर अपने आदर्शों को प्रस्तुत कर सिद्धान्तों पर विजय प्राप्त की। भोग पर त्याग की विजय हुई।

वि० सं० १९८१ ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी का शुभ मुहूर्त निकला। पीपाड़ शहर में मंगलतूर पुनः बज उठे। ओसियां गई भजन मण्डलियाँ पुनः लौट आई। उत्सव-महोत्सव प्रारम्भ हो गए। दाखी की खुशी का तो कहना ही क्या। जिस प्रकार विवाह के समय दुल्हन का रूप और अधिक सौन्दर्य युक्त हो जाता है, उसी प्रकार आन्तरिक प्रसन्नता से दाखी का शरीर और अधिक लावण्यमय हो गया। उत्साह, उल्लास तो देखते ही बनता था। जो देखता वह दंग रह जाता। सर्वत्र दाखी

के अनोखे त्याग व न्याय की हकीकत पुष्प की सौरभ की भांति प्रसरने लगी। लोग उमड़ पड़े इस भावी साध्वी के दर्शन हेतु। निकटस्थ शहर देहली, आगरा, जयपुर, अजमेर, फलौदी, जोधपुर आदि शहरों से लोग चले आ रहे थे। पीपाड़ के बच्चे-बच्चे के मुख से दाखी के त्याग की अमर गाथाएँ गाई जाने लगीं। मंदिर में अट्ठाई महोत्सव प्रारम्भ हो गया। लोग भक्ति भावना में सम्मिलित होने लगे। पूजा, प्रभावना, रात्रि जागरण का ठाठ लगने लगा। दाखी के प्रति सभी के हृदय श्रद्धा से सराबोर हो गये थे।

नित्य प्रतिदिन दाखी को वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर सवारी में घुमाया जाता। लोग उसे आभूषणों से लाद देते। यह दृश्य देखकर किसी के मस्तिष्क में यह प्रश्न उभरना स्वाभाविक था कि जो व्यक्ति सांसारिक भोगों और अतुल वैभव को ठुकरा कर, इससे बाहर निकल रहा है, उसे फिर आभूषणों से अलंकृत करने का क्या अर्थ ? मोह ग्रसित प्राणी तो इन आभरणों से अपने आपको संजा संवार कर ही संतुष्ट हो जाते हैं। वे भोले प्राणी इस नादानी को ही आनन्द स्वरूप मानते हैं और त्यागी वैरागी को भी इस प्रकार सजा-धजा कर संतुष्ट होते हैं। पर जो इनको खुशी से त्याग रहा है, उसे इन आभूषणों से क्या लेना देना ? वह तो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूपी अलंकारों से अलंकृत होता है। इस समय दाखी को भी अलंकृत किया जा रहा है। दाखी ने सोचा—इनके आनन्द में थोड़े समय के लिए विक्षेप क्यों डाला जाय। जैसा ये चाहते हैं, वैसा ही क्यों न करने दिया जाय।

प्रत्येक दिन दाखी को सवारी पर बैठा कर बाजारों में घुमाया जाता। शासन-प्रभावना व त्याग की महिमा सभी की जुबां पर खेल रही थी। दाखी दादाजी के वहाँ भी आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए

गई पर यह क्या ? दादाजी तो निकटवर्ती गाँव में चले गए हैं। दाखी पर उनका स्नेह सीमातीत था। स्नेहिल व्यक्ति का बिछुड़ना किसे पसन्द था। वे अपनी आंखों से दाखी को छोड़ कर जाते हुए किस प्रकार देख सकते थे। दाखी निराश लौट आई। क्या करे, विधाता ने दाखी के साथ यह खिलवाड़ जो किया था। उनके मन की मुराद पूरी जो नहीं हो रही थी।

वि० सं० १९८१ ज्येष्ठ मास की कृष्णा पंचमी का दिन भी आ पहुँचा। यह दिन दाखी व रूपाबाई के अभिनिष्क्रमण का दिन था। आज वे पूर्णतः प्रभु चरणों में, गुरु चरणों में समर्पित हो जावेंगी। प्रातः दर्शन, आदि से निवृत्त हो चुकी, तब निर्धारित समय पर बृहत् थाल में रखे मोदक, लापसी आदि की लुटाई हुई। सभी दाखी के हाथ का प्रसाद पाने को उत्कण्ठित थे, लालायित थे। सभी को प्रसाद वितरण कर यथा समय दीक्षा का वरघोड़ा (जुलूस) निकला। रथ पर माता रूपाबाई के साथ बैठी दाखी वर्षीदान कर रही थीं। मुक्त हस्त से द्रव्य राशि का दान कर रही थी। उसका दान जन-जन को संसार की असारता इंगित कर रहा था। सर्व संघ व समाज के अग्रगण्यों की निश्रा में जुलूस यथा समय गाँव के बाहर तालाब के किनारे स्थित शान्तिनाथ भगवान् के मंदिर पर पहुँचा। सभी की नजरें दाखी के और रूपाबाई के मुख मण्डल को निहार रही थीं। जनमेदिनी जय-जयकार कर रही थी। मंदिर में स्थित सभा मण्डप में साध्वीजी म० भगवन्त की प्रतिमा के समक्ष सुशोभित हो रही थीं। मण्डप जय-जयकार से गुंजित हो रहा था।

सेठ मगनमलजी की पौत्री, मिश्रीमलजी की इकलौती पुत्री, रूपाबाई की दुलारी परिजनों की प्यारी दाखी आज सर्वस्व त्याग कर रही थी। आज वह वीर पथ की पथिका बन रही थीं। श्रमणी धर्म

को अंगीकार कर रही थी। नन्दी में विराजित प्रभु के समक्ष आज उसके संकल्प पूर्ण हो रहे थे।

दाखी ने सर्व संघ की, परिजनों की आज्ञा लेकर पूज्या जतन श्रीजी म० सा० से रजोहरण प्राप्त किया। संसार रूपी रज को, मिट्टी को झाड़ने हेतु रजोहरण प्राप्त कर दाखी की खुशी सीमातीत हो रही थी। रजोहरण प्राप्त कर दाखी स्नानादि कार्य के लिए ले जाई गई। स्नानादि के पश्चात् श्वेत परिधान में मुण्डित मस्तक युक्त जब सभी ने अपनी प्यारी दाखी को श्रमणी वेश में आते देखा तो उपस्थित जन-समुदाय का हृदय द्रवित हो उठा, मन रो पड़ा। आह! जिस दाखी पर आज तक हमारा आधिपत्य था, वह आज उन बन्धनों से मुक्त हो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हो जावेगी। ओह! कितनी कोमल इसकी देह है, संयम का दुष्कर ताप उसे किस प्रकार सह्य होगा। धन्य है यह पीपाड़ नगरी और धन्यवाद की पात्र है तू दाखी। यद्यपि रूपादेवी भी श्रमणी हो रही थी पर सभी की जिह्वा पर दाखी का ही नाम था। सभी की जुबां समवेत स्वर में दाखी के त्याग का अनुमोदन कर रही थी।

देखते-देखते दाखी ने समारोह स्थल में प्रवेश किया। मानो शुभ्र श्वेत परिधान की उज्ज्वलता दाखी के निर्मल जाज्वल्यमान उत्तम जीवन का संदेश दे रही थी।

भागवती दीक्षा की क्रियाएँ प्रारम्भ हुई। श्रमण परम्परा के अनुसार नामकरण होना अभी शेष था। सभी को इसी की प्रतीक्षा थी कि दाखी का क्या नाम होगा? सर्वाधिक आनन्द हो रहा था दाखी को। क्योंकि जिसे प्राप्त करने के लिए उसे न्याय वेदिका पर चढ़ना पड़ा, समाज से, परिवार से टक्कर लेनी पड़ी। वे आशाएँ आज फलीभूत हो रही थीं। आज वह सर्वविरति धारण कर रही थी।

स्वर्ण रत्नाभूषणों को त्याग कर पंच महाव्रत रूपी, अष्ट प्रवचन माता रूपी आभूषणों से शोभायमान होगी। वीर प्रभु के चरणों में पूर्ण-रूपेण समर्पित हो जावेगी। उसकी साढ़े तीन करोड़ रोम-राशि उल्लसित हो रही थी। अंग-प्रत्यंग विकसित हो रहा था। पूज्या जतन श्रीजी म० सा० ने सर्व संघ से, परिवार से आज्ञा लेकर दाखी व रूपाबाई को श्रमणसूत्र 'करेमिभंते' का उच्चारण करा दीक्षा प्रदान की।

सभी को प्रतीक्षा थी दाखी के नामकरण की। वह घड़ी, वह वेला भी आ पहुँची। जतन श्रीजी म० सा० के श्रीमुख से रूपाबाई का नाम 'विज्ञान श्रीजी' और मृदुस्वभाव वाली तीव्र बुद्धिमती दाखी का नाम रखा 'विचक्षण श्री'।

दीक्षास्थल विज्ञान श्रीजी, विचक्षण श्रीजी के जय-जयकार से गुंजायमान हो रहा था। जन-जन की दुलारी दाखी आज से विचक्षण श्रीजी म० सा० के नाम से विख्यात होगी। सभी अश्रुपूर्ण नयनों से दाखी का मंगल पथ निहार रहे थे। सभी के हृदय में द्वैत भावों का संक्रमण हो रहा था। हर्ष व शोक का सम्मिश्रण हो रहा था हृदय में। समाज से जूझ, दाखी अपने कल्याण पथ पर अग्रसर होकर ही रही। आज का यह अनुपम दृश्य देखते ही बनता था। इधर दाखी ने विचक्षण श्री बनकर तन, मन, धन समर्पित कर दिया गुरु चरणों में।

आज पीपाड़ का बच्चा-बच्चा रो रहा था। आबाल-वृद्ध सभी के नेत्र अश्रुपूरित हो रहे थे। आज विदाई का दिन था। विज्ञान श्रीजी म० और विचक्षण श्रीजी म० सा० आज पीपाड़ से प्रस्थान कर रहे थे वीर प्रभु का अमर संदेश जन-जन में प्रसारण करने के लिए। साध्वी जी श्री जतन श्रीजी म० ने संघ के समक्ष विहार का प्रस्ताव

रखा और संघ को विवश हो अनुमति देनी ही पड़ी। क्योंकि 'बहता पानी निर्मला, पड़ा सो गंदा होय' इस कहावत के अनुसार निर्मल नीर की भांति संत भी विचरण करते रहते हैं। 'रमते राम विचरते योगी' युक्ति चरितार्थ हो रही थी।

सारा पीपाड शहर उमड़ पड़ा अपनी दुलारी साध्वी वेश में दाखी को भाव भीनी विदाई देने के लिए। और दाखी प्रयाण कर रही थी साध्वाचार की प्रथम पगडंडी पर।

सारा पीपाड़ शहर उमड़ रहा था किन्तु एक व्यक्ति तड़फ रहा था। अपने जीवन के आधार को इस प्रकार, इस वेश में, अपने से अलग होते वह कैसे देख सकता था? दीक्षा से पूर्व जब दाखी आशीर्वाद लेने आने वाली थी, उस दिन तो वे पीपाड़ से ही चले गए थे। वे अपनी लाड़ली को इस प्रकार निराधार छोड़ कर जाती हुई कैसे देख सकते थे? उनको अपना जीवन मृतवत् अनुभव हो रहा था। चित्त में चैन नहीं था। आज उनका सर्वस्व लुटा जा रहा था। दाखी की दीक्षा भी वे आंखों से नहीं देख पाये। आज वे छटपटा रहे थे पर लाचार थे। उनके वश की बात न थी। मोह ग्रसित व्यक्ति मोहाभिभूत बनकर इस अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। विचक्षण श्री बनी दाखी आज यहां से विदा हो रही थी।

चातुर्मास नजदीक था। पूज्या जतन श्रीजी म० सा० के सान्निध्य में बडलू (वर्तमान में भोपालगढ़) में चातुर्मास सानन्द सम्पन्न कर विचक्षण श्रीजी जोधपुर पूज्य आचार्य श्री हरिसागरजी महाराज की छत्रछाया में पहुंची। आपको यहां योगोद्वहन करना था। योगोद्वहन करने के लिए तप करना अनिवार्य था। किन्तु निष्ठा व लगन के साथ योगों को धारण कर आपकी बृहद् दीक्षा सं० १९८१ माघ शुक्ला पंचमी बसन्त पंचमी को निष्पन्न हुई। जीवन का बसन्त

प्रारम्भ हुआ। खुशहाल चमन महक उठा। लघु दीक्षा तो साध्वाचार का आयाम था, एक ट्रेनिंग रूप, प्रशिक्षण रूप थी। आज वृहत् दीक्षा के पश्चात् कोई बाधा शेष न रही। कोई रुकावट न रही। एक ही इच्छा शेष रही थी पूज्या सुवर्ण श्रीजी म० सा० के चरणों में पहुँचने की।

दाखी आज बड़ी प्रसन्न नजर आ रही थी। आज उसके मन की मुराद पूरी होने जा रही थी। जिनके दर्शन के लिए यह मन वैचेन हो रहा था, वह शुभ घड़ी आने वाली थी। वडलू चातुर्मास के पश्चात् वड़ी दीक्षा करके अजमेर पहुँचे। वहाँ समाचार मिले कि वयोवृद्धा हुलास श्रीजी म० सा० गिर पड़े हैं। अपना कर्त्तव्य समझ जतन श्रीजी म० सा० के साथ जयपुर प्रवेश किया। अजमेर संघ व जयपुर संघ ने नवदीक्षिता साध्वी का स्वागत उल्लसित मन से किया। जयपुर में ज्ञानाभ्यास बराबर चल रहा था। इधर वैयावच्च, सेवा का भी लाभ मिल रहा था। सब कुछ होते हुए वेचैन कर रही थी पूज्या सुवर्ण श्रीजी म० सा० की स्मृति। वर्षों से जो सपने सजोये थे वे अब निकट में ही फलीभूत होने वाले थे। श्रद्धा व भक्ति की तरंगें मन में उठ रही थीं। पूज्या श्री देहली में विराजमान थीं। वृद्धावस्था के साथ व्याधियों ने भी अपना डेरा डाल दिया था।

पूज्या सुवर्ण श्रीजी महाराज साहिबा के दर्शन कर विचक्षण श्री ने अपने आपको चरणों में समर्पित कर दिया। विचक्षण बुद्धि व चातुर्य को धारण करने वाली विचक्षण श्री को शिष्या रूप में प्राप्त कर आप भी प्रसन्न थीं। प्रसन्नता इस बात की न थी कि उनके शिष्य परिवार में वृद्धि हो रही है, किन्तु हर्ष का विषय तो यह था कि ये शासन की बागडोर उत्तम रीति से सम्भालेंगी और जिन शासन की भूरि-भूरि प्रभावना करेगी। जैसी कि कहावत है कि 'पूत के लक्षण

पालने में ही नजर आ जाते हैं। अपनी नवदीक्षिता शिष्या को उन्होंने ज्ञानामृत का पान कराना प्रारम्भ किया। ज्ञान सैद्धान्तिक नहीं, व्यवहारिक नहीं वरन् निश्चयात्मक भेद-ज्ञान। जड़ जगत् और चेतन जगत् का ज्ञान। जड़ भिन्न चैतन्य स्वरूप का ज्ञान। आत्मा नित्य छै देह थी भिन्न छै, यह ज्ञान। साथ ही व्याकरण, काव्य, कोष, छन्द, अलकार, न्याय आदि का अभ्यास भी प्रारम्भ हो गया। अल्प समय में इनका ज्ञान प्राप्त कर आगमों के अध्ययन की ओर आपका लगाव हुआ।

शास्त्र पठन में आपकी अत्यन्त रुचि थी। जो भी किताब हाथ आई वह शीघ्र पूरी करना और उसे पूर्णरूपेण हृदयंगम कर समझाने की चेष्टा करना। वे जो भी पढ़ती रात्रि में उसे स्वयमेव बोल-बोल कर समझातीं। अपने शब्दों मे उस विषय को प्रतिपादन करने का प्रयत्न करती। यही आपकी व्याख्यान शैली की चारुता का बीजारोपण था।

आज कार्यक्रम था महिलाओं के भाषण का। महिला मंडल की कुछ औरतों ने मिलकर ही यह प्रोग्राम रखा था। पांच-पाच मिनिट सभी को बोलना था। साथ ही विचक्षण श्रीजी ने भी प्रस्ताव रखा कि मुझे भी बोलने का अवसर दिया जाय, तो पूज्या गुरुवर्या श्री ने इसे मान्य किया। विचक्षण श्री का चिन्तन आगे बढ़ा—कि ये तो गृहस्थ हैं और मैं हूँ साध्वी। अग्रिम स्थान मुझे ही प्राप्त करना चाहिये। इस बात को लक्ष्य में रखकर पत्र-पत्रिकाओं का निरीक्षण प्रारम्भ किया और जोर शोर से तैयारी करने लगीं। आज वह सुअवसर आ गया। विचक्षण श्री पूज्या गुरुवर्या श्री का आशीर्वाद प्राप्त कर बोलने लगी। और आपने अग्रिम स्थान प्राप्त कर ही लिया। सभी ने आपके भाषण की भूरि-भूरि प्रशंसा की। शनैः शनैः

प्रोग्राम बनाए जाने लगे और अत्यधिक सफलता प्राप्त होने लगी। किन्तु विचक्षण श्रीजी इसे गुरु कृपा का ही सुफल मानती। पाषाण शिला जब सुयोग्य कलाकार के हाथ में चली जाती है और वह उस पर टांचे लगा-लगा कर तीक्ष्ण छैनी से तराश कर उसने विश्व आराध्य प्रतिमा का रूप दे देता है, घट का निर्माण करते समय कुम्भकार ऊपर से चोट लगाने के बावजूद भी नीचे सहायक हाथ रखता है, उसी प्रकार गुरुवर्या श्री विचक्षण श्रीजी को आत्म विकास की ओर अग्रसर कर रही थीं। जीवन निर्माण का साधन, जीवन जीने की कला सिखला रही थीं। सुवर्ण पात्र ही शेरनी का दुग्ध ग्रहण कर सकता है। छैनी की टांचे के आघातों को सहने वाला पाषाण ही साकारता को प्राप्त कर सकता है, पर जो आघात न सह कर, छिटक-छिटक जाय, वह शिला व्यर्थ समझी जाती है। वह प्रतिमा न होकर प्रस्तर खण्ड ही कहलाती है। इसी प्रकार गुरु के रोम-रोम में शिष्य के जीवन विकास की पुनीत भावना, कल्याण कामना निहित है। आप भी सदा गुरुवर्या श्री के पादारविन्दों में सेवा के लिए उद्यत रहतीं। गुरु श्रीजी को कभी यह जानने की चेष्टा न करनी पड़ती कि वे क्या कर रही हैं? हर क्षण गुरु सेवा में, गुरु विनय में व्यतीत हो, यही विचक्षण श्रीजी की भावना रहती। साध्वी समुदाय में आप वय और दीक्षा पर्याय में सबसे छोटी थीं। वैसे हम उम्र की साध्वियाँ बहुत थीं किन्तु वे सभी तपस्या, वय और पर्याय में ज्येष्ठ थीं। एक से एक विदुषी साध्वी होने पर भी आप पर सभी का वात्सल्य, स्नेह अतुल–असीम था। सभी आपको छोटे महाराज कह कर पुकारते। गुरुवर्या सुवर्ण श्रीजी आपको छोटा कह कर सम्बोधित करतीं। वैसे आपका कद भी छोटा ही था। सभी का सम्मान, प्यार मिलने पर भी आप गुरुवर्या श्री की सेवा के लिए हर घड़ी पल तत्पर रहतीं। और यही तमन्ना रहती कि सर्वाधिक लाभ मुझे मिले। किन्तु

विशालता यह थी कि अन्य को सेवा करते देख ईर्ष्या, असूया को तनिक भी स्थान नहीं देती थी।

गुरुवर्या श्री भी समय-समय पर अपनी लघुतम अन्तेवासी को उपदेश दिया करती। सैद्धान्तिक, व्यावहारिक ज्ञानार्जन कराया करतीं। छोटे महाराज निर्निमेष अपलक उन हित शिक्षाओं का आकण्ठ पान किया करतीं। देहली चातुर्मास व्यतीत कर उसके पश्चात् जयपुर, फिर बीकानेर प्रयाण किया। अब वृक्ष की छाया की भांति आप गुरु चरणों में समय व्यतीत करतीं। गुरुवर्या श्री के स्वास्थ्य में शिथिलता आती जा रही थी। शनैः शनैः इस देह ने विचरण करने का निषेध कर दिया और आपको स्थिरवास करने को मजबूर होना पड़ा। आपकी इच्छा नहीं थी कि स्थिर वास करें पर कर्मचन्द को किसी की शर्म नहीं। सोचा कार्य भी कर्म के आगे रह जाता है। व्याधियों से विवश हो आप बीकानेर में स्थानापन्न हुई। छोटे महाराज विचक्षण श्रीजी इस समय १८-१९ वर्ष की थीं। बड़ी निष्ठा व लगन से आप गुरु सेवा में लगी रहतीं। दिन और रात कब किधर निकल जाते, खबर भी नहीं होती। इस समय आपने अध्ययन से अधिक महत्त्व वैयावच्च गुरु सेवा को दिया। व्याधियों ने अपना जोर पकड़ा। दिन पर दिन हालत बिगड़ने लगी और सेवा भी अधिक होने लगी। किन्तु क्रूर कराल काल अपना जाल फैलाने लगा। उसके शिकंजे से बच सकना किसी के वश की बात नहीं। जिसने जन्म लिया उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है। उसका शिकार सभी को होना ही पड़ता है। छोटे महाराज व अन्य सभी साध्वी वर्ग की सेवा और निरन्तर की जाने वाली प्रार्थना भी यमराज को पिघला न सकी। शनैः शनैः स्थिति बिगड़ने लगी।

वि० सं० १९८९ का माघ महीना प्रारम्भ हो गया। शारीरिक

शिथिलता अत्यधिक हो गई। किन्तु सभी को आश्चर्य में डाल देती थी सुवर्ण श्रीजी महाराज की समता। श्वास फूलने लगता, दमे की बीमारी होने पर भी आपकी अंगुलियों पर अंगुष्ठ फिरता रहता अर्थात् आपका मानस जाप, अजपा जाप चलता। कभी कोई परमात्म छत्तीसी गाता, तो कोई पुण्य प्रकाश का स्तवन। कोई आलोयणा कराता तो कभी कोई स्तवन गाता। निरन्तर नवकार मंत्र की धुन चलती रहती। माघ महीने के आठ दिन व्यतीत हो गये। माघ वुदी नवमी का दिन। आज हालत नाजुक दिखाई दे रही थी। सभी नवकार मंत्र की धुन लगाने लगे। त्याग प्रत्याख्यान करवा दिये गये। संध्या के पौने पाँच बजे आपने इस नश्वर देह का समाधि मरण से त्याग किया। टिमटिमाती दीपशिखा बुझ गई। संघ के प्रदीप की लौ बुझ गई। सर्वत्र अंधकार हो गया। सारा संघ शोकाकुल हो गया। रेल दादावाड़ी में माघ वुदी दशमी को आपका अंतिम संस्कार, अन्त्येष्टि की गई।

एक ज्योति विलीन हुई किन्तु छोटे महाराज के शोक का पारावार नहीं। दीक्षा के पश्चात् ७-८ वर्ष के अल्प समय ही आपकी छत्रछाया रही। परिवार का मोह जिसे बांध नहीं पाया, दादाजी के आंसू तक जिसे विचलित न कर सके, आज धर्म जननी के विरह ने उन्हें विह्वल बना दिया। मात्र सात साल का सहवास, संस्कारों का बीजारोपण होकर, उन वपन किए गए बीजों में से कुछ-कुछ अंकुर ही प्रस्फुटित हुए थे कि वात्सल्य भरा हाथ सिर पर से उठ गया। मझधार में निराधार छोड़ चल बसे। यद्यपि माता विज्ञान श्रीजी महाराज साथ में ही थीं फिर भी संसार शून्यवत् प्रतीत हो रहा था, स्नेहिल, दुनिया रूपी चमन उजड़ गया। बगिया सूख गई, हृदय हाहाकार कर उठा।

सर्वत्र हाहाकार हो गया। वीतराग वाणी से प्रेरित हो सभी

एक दूसरे को धैर्य बंधा रहे थे। किसी कवि का कथन सत्य प्रतीत हो रहा था—

गुरु विरह सब विरहों में भारी है।
इससे हारे ज्ञानी नर नारी हैं।

सभी गुरु बहिनों का भरपूर वात्सल्य होने पर भी गुरु विरह सदैव आपको हर घड़ी पल सताता रहता। बीकानेर में रहना दुश्कर जान आप वहाँ से विहार कर निकटस्थ ग्राम गंगा शहर में पधारीं और संघ की अत्यधिक विनती होने से चातुर्मास की स्वीकृति दी। इधर गुरुवर्या श्री की छत्री का निर्माण कार्य प्रारम्भ करवा दिया।

सम्मुख उत्तराध्ययन सूत्र के पत्राकार पन्ने रखे थे। गुरुवर्या श्री के स्वर्गारोहरण के पश्चात् व्याख्यान की जिम्मेदारी आपके बाल-स्कन्धों पर आ पड़ी। किन्तु सिंह का बच्चा भी जिस प्रकार खूंखार होता है और सिंह के सभी लक्षण उसमें दृष्टिगत होते हैं, उसी भांति आपके बाल स्कन्धों ने उस भार को दृढ़ता से वहन किया। उत्तराध्ययन सूत्र सम्मुख था, आज तक कभी उसे हाथ से स्पर्श तक नहीं किया था, साथ ही सभी विदुषी गुरु बहनों ने भी वहाँ से प्रयाण कर दिया। अब कौन समझाये सूत्र सिद्धान्त को। पाठ समक्ष था पर समझ में नहीं आ रहा था। यकायक नयनों से अश्रुस्रोत उभर पड़ा। भावों में गुरुवर्या श्री की मंजुल प्रतिमा का साक्षात्कार हुआ। गुरुवर्या आप ही सहायक हैं, आप ही मार्ग दर्शक पथ प्रदर्शक हैं। अब इसका क्या अर्थ होगा, समझा दो ना। अब मैं किसके आगे हाथ पसारूं। मेरी शंका का समाधान करो मां! आप बिना कौन विघ्न बाधायें हरेगा? दूसरी तरफ यकायक मस्तिष्क में प्रकाश पुंज उभर आता। जो सूत्र समझ नहीं आ रहा था—स्वतः ही उसका समाधान हो जाता। शंकायें दूर हो जाती।

छोटे महाराज पर गुरुवर्या सोहन श्रीजी का पूर्णरूपेण वरद् हस्त था। गुरु कृपा का प्रसाद गुरु विनय के प्रतिफल में पूर्णतया प्राप्त हो चुका था। यहाँ शासन की आन का, गुरुवर्या श्री की शान का प्रश्न था और गुरु भक्ति जिसके अन्तःकरण में, मानस में कूट-कूट कर भरी थी उसका सुफल था। बीकानेर से संघ के अग्रगण्य श्रावक व्याख्यान श्रवण कर हर्ष विभोर हो जाते। और सभी के मुख से निकल पड़ता—सोहन श्रीजी महाराज ने उत्तरावस्था में भी रत्न को प्राप्त कर लिया था। इसमें दो राय नहीं कि वे भी आपको वृद्धावस्था में प्राप्त करके भी प्रसन्न थी। और उन्हें यह भली भांति विदित हो गया था कि इसकी कुशाग्र वुद्धि 'अक्लमंद को इशारा' के सदृश है।

आपकी व्याख्यान शैली की प्रसिद्धि उदित हुए भानु की प्रसरती हुई रश्मियों के समान चहुँ-दिशि प्रसारित हो गई। प्रस्फुटित होती हुई कली की सौरभ वातावरण को सुगंधित बना देती है। सर्वत्र आपकी प्रसिद्धि होने लगी। चातुर्मास काल व्यतीत होने को था। आपने लक्ष्य बनाया दीक्षा गुरु की छत्रछाया में रहने का। चातुर्मास के पश्चात् पूज्या गुरुवर्या श्री सोहन श्रीजी म० सा० के समाधि मंदिर की प्रतिष्ठा करवा कर आपने संघ के समक्ष विहार का प्रस्ताव रखा।

किन्तु इसी बीच इस खिलती हुई बालिका ने भरपूर योग्यता प्राप्त कर ली गुरु पद की। आपके सदुपदेशों से प्रतिबोधित हुई बीकानेर निवासी आसकरणजी पुंगलिया के पुत्र लालचन्दजी की धर्मपत्नी एवं नागौर निवासी वृद्धिचन्दजी खजान्ची की सुपुत्री मात्र बीस वर्ष की बाल विधवा कल्याण बाई। आपने देहली की ओर प्रस्थान किया और विहार का लाभ लिया कल्याण बाई ने।

पश्चात् देहली चातुर्मास में भी आपके सदुपदेशों का प्रभाव पड़ने लगा। जैसलमेर निवासी रिखवदासजी नाहटा की धर्मपत्नी इचरजबाई भी वैराग्यवती बनी।

दोनों ही आपके उपदेशों से प्रतिबोधित हुईं किन्तु आपश्री ने यह भेंट गुरु पद पर चढ़ाई। दोनों की दीक्षा देहली में सानन्द सम्पन्न हुई। कल्याण बाई का नामकरण अविचल श्रीजी और इचरज बाई का अशोक श्री। ये दोनों शिष्य रत्न घोषित हुईं जतन श्रीजी महाराज साहब की।

□ □ □

७

ग्रामों-नगरों में धर्मध्वजा फहराते हुए, वीर का संदेश प्रसारण करते हुए चल दिये आप सिद्धाचल की ओर। शाश्वत तीर्थधाम शत्रुञ्जय में देवाधिदेव आदीश्वर प्रभु के दर्शनों की उर्मियाँ, हृदय-सरोवर में उठने लगीं। देहली से आप जयपुर पधारे यहाँ पर सागरमलजी सरदारमलजी संचेती के नवपद उद्यापन पर आचार्य देव हरिसागर सूरिजी महाराज श्री पधारने वाले थे। नव दीक्षिता साध्वी की वृहत् दीक्षा शेष थी, योगोद्वहन कराना था अतः आपने कुछ समय जयपुर में व्यतीत करने का सोचा। किन्तु आचार्य भगवन् की आज्ञा व संघ के अत्याग्रह से आपको सं० १९९३ का चातुर्मास यहीं करना पड़ा। कविकुल किरीट कवीन्द्रसागरजी महाराज, हेमेन्द्रसागरजी महाराज, उदयसागरजी महाराज, कान्तिसागरजी महाराज भी आचार्य देव के साथ थे। इस समय कान्तिसागरजी महाराज एवं उदयसागरजी महाराज ने मासक्षमण की तपस्या की। विचक्षण श्रीजी महाराज

प्रवचन देते हुए
साध्वी श्री विचक्षण श्री जी म० सा०

भी सदैव प्रवचन में जातीं और ज्ञानाभ्यास चलता रहता। आपकी विनयशीलता, नम्रता आदि विशेष गुणों से आप पर सभी का वरद् हस्त था।

इस बीच सूरज श्रीजी म० जो कि आप श्री से रत्नाधिक थे तथा स्थूलकाय थे आपकी उत्कट भावना थी सिद्धाचल को भेटने की पर सान्निध्य की आवश्यकता थी। कौन मेरी जिम्मेदारी लेगा, मेरा साथ दे सकेगा अतः वह भावना मन में ही अटकी थी, बाहर निकलना चाह रही थी पर किस बलबूते पर निकले। जब-जब छोटे महाराज से मिलना होता तो सूरज श्रीजी म० सा० के याचना भरे नयन सम्मुख होते। आखिर उन नयनों की याचना की मूक भाषा को पढ़ लिया उन चतुर परीक्षक के नयनों ने। आप मन के भावों को पढ़ने में अत्यन्त ही कुशल थीं। एक दिन अवसर पाकर छोटे महाराज ने निवेदन किया—महाराज श्री मुझे ऐसा लगता है कि आप मुझे कुछ कहना चाहती हैं पर न जाने क्यों आपके कंठ अवरुद्ध हो रहे हैं। क्या आपका मुझ पर अधिकार नहीं। क्या मैं आपकी नहीं जो मुझे कहने में हिचकिचाते हैं। मुझसे बनते प्रयत्न मैं आपकी सेवा करूंगी। कृपा करके एक बार तो आप मुझे सेवा का अवसर प्रदान करें।

छोटा! तुम तो हमेशा सेवा के लिए तत्पर रहती ही हो। पर मेरी तमन्ना ही कुछ ऐसी है कि वह बोझ रूप है। मैं स्वयं जानती हूँ कि यह गाड़ी पार कैसे होगी, पर भावना के धक्के से व तुम्हारे सहारे से नैया किनारे लग भी सकती है। सूरज श्रीजी महाराज ने धीरे-धीरे कहा।

महाराज श्री! छोटे महाराज बोले—आप निःसंकोच अपने उद्गार कहिये। मैं बनते प्रयत्न यथा संभव, उसे पूर्ण करने की कोशिश करूंगी। आश्वासन भरे इन शब्दों को सुन उन्होंने फरमाया—

मेरी भी इच्छा सिद्धाचल गिरि भेटने की है किन्तु वृद्धावस्था के साथ यह स्थूल शरीर बाधक हो रहा है। यदि तुम अंधे की लकड़ी बन सको तो मेरी भावना को बल मिले।

महाराज श्री, यह तो मेरा परम सौभाग्य है जो आपकी छत्रछाया में सिद्धाचल की यात्रा करूं। आप ऐसा क्यों कहते हैं। मैं तो आपकी पद रज हूँ। सेवा करने का मौका मिलना तो अत्यन्त दुर्लभ है। आप बुजुर्गों का साथ भला फिर कब मिलने वाला है ? आप अवश्य साथ चलिएगा। यह सुअवसर फिर कब मिलने वाला है। आप जरा भी चिन्ता न करें, आपको किसी बात की तकलीफ नहीं होगी।

प्रसन्न बनी सूरज श्रीजी आपको दुआएँ देने लगीं। वैसे सम्पूर्ण साध्वी मण्डल आप पर न्यौछावर था, किन्तु जब उनकी मनोकामना पूर्ण हुई देख अनन्त-अनन्त आशीर्वाद देने लगी। यथा समय आपने जयपुर से प्रयाण किया। सर्व प्रथम गुरु तीर्थ मालपुरा पधारे। वहाँ उमग श्रीजी म०, कल्याण श्रीजी म० भी पधार गये तथा टोंक वाले बाबू चान्दमलजी की बहन तेजबाई को दीक्षा में सम्मिलित हो आपका नामकरण त्रिभुवन श्रीजी किया। वहाँ से ब्यावर होते हुए गोडवाल की पंचतीर्थी करते हुए अन्य सभी यात्राएँ सूरज श्रीजी म० को भी कराई।

सिद्धाचल तीर्थ पर गिरिराज की छाया में प्रभु आदिनाथ के दर्शन कर मन मयूर नृत्य करने लगा। नयन पुलकित हो गये। हर्ष विभोर हो मुख से स्तवना, स्तुति होने लगी। नयनों से अश्रु प्रवाह प्रवाहित होने लगा। अर्चना, स्तवना, गुण वर्णना करते समय ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वर्षों पश्चात् बिछुड़े साथी मिले हों। दीर्घकाल से उठ रही भक्ति की लहरें तरंगित होने लगीं। भक्ति गंगा बह चली।

चातुर्मास निकट ही था। आपने यह चौमासा सिद्धाचल ही करने का निश्चय किया—नवाणु यात्रा, हस्तगिरि, कदम्बगिरि की यात्रा, छः कोस, तीन कोस और बारह कोस की फेरी की।

साथ ही एक और लाभ इस तीर्थ धाम में यह मिला कि श्रीमद् जिन कृपाचंद सूरिजी महाराज साहब रुग्णावस्था एवं वृद्धावस्था जानकर इस नश्वर देह का त्याग करने हेतु तीर्थधाम पधारे। आपको इन महात्मा के दर्शनों का अपूर्व लाभ अनायास ही यहाँ पर प्राप्त हुआ। आपने यहाँ से गिरनार आदि की यात्रा कर बड़ौदा चातुर्मास किया। इसी दौरान पादरा संघ विनती के लिए बराबर आते रहे। अतः आपको स्वीकृति देनी पड़ी। चातुर्मास के दौरान आसोज मास में आपको मलेरिया ने आ जकड़ा। दीपावली पश्चात् कुछ स्वास्थ्य में सुधार हुआ और आपने यथा समय पादरे की ओर विहार किया।

पादरे में अध्यात्म रस के रसिया अधिकांश रूप में निवास करते। वहाँ आपके सान्निध्य में अध्यात्म-सरिता प्रवाहित होने लगी। भक्त लोग ज्ञान गंगा में डुबकियाँ लगाने लगे। अध्यात्म पवन में हिलोरें लेने लगे। सारा संघ प्रवचन सुन झूम उठा। समय तो अपनी गति पर था। पर विहार का समय सभी की नजरों से दूर हो गया। वह समय भी आ गया। पादरे निवासी विह्वल हो गए। चातुर्मास की बहुत ही विनति की पर आपको गुरु चरणों में शीघ्र पहुँचना था, अतः एक शर्त रखी कि यदि आप गुजरात में रहें तो चातुर्मास पादरा में ही करियेगा।

दैवयोग से, अहमदाबाद पहुँचते ही आपको ज्वर ने नोटिस दिया और उसके बाद जब आपने मध्य प्रदेश रतन श्रीजी म० के दर्शन के लिए कदम उठाए तो कपड़वंज जाकर अशोक श्रीजी म० अस्वस्थ हो गये। आखिरकार पादरे चातुर्मास करने का ही निश्चय किया।

भविष्य के गर्भ में क्या लिखा है, इसे कौन जान सकता है ? यहाँ कई पुण्यात्माओं का उद्धार जो होना था।

पादरा से पोपटभाई योगीराज विजय शान्ति सूरिश्वर जी म० से दीक्षा की विनती करने गए किन्तु जैसे ही आपश्री के समक्ष गए वैसे ही आपने फरमाया कि दीक्षा के लिए आए हो। दीक्षा सानन्द हो जावेगी। इस अनहोनी घटना से पोपटभाई आश्चर्यान्वित हो गए। मैंने तो दीक्षा का जिक्र भी नहीं किया, स्वतः ही योग बल से इनको जानकारी हो गई।

पादरे में चातुर्मास के दरम्यान पानाचन्द भाई की सौभाग्यवती कन्या लीला बहन जो मात्र २१ वर्ष की उम्र में पति सुख को त्याग कर वैराग्यवती बनी और साथ ही सोमाभाई अमृतचंद की पुत्री पद्मा १८ साल, मोतीलाल पाराचन्द की पुत्री तारा १४ साल, एवं रतिलाल मोहनलाल की पुत्री विद्या १३ साल की अल्प वय में वैराग्य धारण कर संयम ग्रहण करने को उत्सुक हुई। बड़ौदा में लीला बहन की दीक्षा हुई और निपुणा श्रीजी नाम रखा गया। किन्तु तारा व विद्या को आज्ञा प्राप्त न हो सकी। अभिभावकों ने आज्ञा प्रदान कर दी थी पर उस क्षेत्र में अल्प वयस्क की दीक्षा पर नियन्त्रण होने से आज्ञा बाहर न आने दी। विचक्षण श्रीजी म० ने भी वहाँ से प्रस्थान कर दिया। आप में शिष्या मोह तो नाम मात्र भी छू नहीं पाया था। आपने देहली की ओर कदम बढ़ाये किन्तु 'त्यागे उसके आगे'। दीक्षार्थिनी बालाओं ने माता-पिता से अत्याग्रह किया। रो-रो कर अर्ज गुजारी। आखिर माता-पिता ने पालनपुर पत्र लिखा और दीक्षा की विनती की। प्रश्न था दीक्षा कहाँ देना। तब महाराज श्री ने फरमाया योगीराज की छत्रछाया में दीक्षा हो तो उत्तमोत्तम अन्यथा देहली जाकर गुरुवर्या श्री के पास होगी।

आप योगीराज से आज्ञा ले आवें। अतः पोपट भाई दीक्षा विनती के लिए आबू गए।

तारा व विद्या हर्षातिरेक में नाच रही थीं पर पद्मा को आज्ञा न मिल पाई। योगीराज आबू के निकटस्थ अनादरा में विराजित होने से सभी आबू से अनादरा पहुँचे। फाल्गुन महीने में योगीराज की पुनीत निश्रा में तारा, विद्या को दीक्षित कर तिलक श्री, विनीता श्री घोषित किया। योगीराज के हाथों से यह पहली व अन्तिम दीक्षा थी। योगीराज शान्तिसूरिजी म० की विचक्षण श्रीजी म० पर महती कृपा थी। यह दीक्षा उसकी परिचायक है।

अब आपका एकमात्र लक्ष्य देहली गुरुपद की छाया में पहुँचने का था पर योगीराज की आज्ञा नहीं मिली। अवज्ञा करना तो मानों संकटों को मोल लेना था। एक दिन प्रवचन सुनते-सुनते नासिका से अविरल रक्त प्रवाह होने लगा। औषधोपचार निष्फल गए। रात्रि में जाकर खून बंद हुआ। साध्वी वर्ग, अन्य सभी जने चिन्तित थे। पर जब योगीराज के दर्शनार्थ गए तब आपने फरमाया अच्छा हुआ गंदा खून बाहर आ गया अन्यथा दिमाग खराब हो जाता। कमजोरी बहुत आ गई थी। चातुर्मास के मात्र पन्द्रह दिन अवशेष रहे तब आज्ञा प्राप्त हुई। अल्प समय किस स्थान पर चातुर्मास करें, समस्या थी। दो ही क्षेत्र नजदीक थे—दांतलाई और मालवाड़ा। धधकती रेत पर चलना और नवदीक्षित साध्वियों का साथ में होना। आषाढ़ सुदी नवमी देखते-देखते आ गई। आप मालवाड़ा के निकट ग्राम में पहुँचे। चातुर्मासार्थ विनती करना अपना कर्त्तव्य समझ गणमान्य व्यक्ति आए। समयाभाव से विनती मंजूर करनी पड़ी। अपरिचित क्षेत्र व अपरिचित व्यक्ति पर चौमासे में ऐसी धूमधाम हुई कि सभी इस

ऐतिहासिक चातुर्मास से आनन्दित हो गए। अल्प वय में इतना ज्ञा और उत्तम वाक्शैली ने सभी को मंत्र मुग्ध वना दिया।

मालवाड़ा से विहार कर जोधपुर पधारी। पू० विज्ञान श्रीजं म० नव दीक्षित साध्वियों की वृहद् दीक्षा फलोधी करवाकर जोधपु आ गए। पू० लाल श्रीजी म० के दर्शन—वन्दन कर विचरण करं हुए जयपुर आये। जयपुर रुकने का तो जरा भी विचार नहीं था— पर भावी को यही मंजूर था। किन्तु प्रवर्तिनी महोदया ज्ञान श्रीजं म० सा० की आज्ञा को महत्त्व देकर संघ की इच्छा व देश की आपत कालीन स्थिति देखकर आपने विज्ञान श्रीजी म० सा० एवं प्रवर्तिनं महोदया की शिष्या शीतल श्रीजी म० को देहली भेजा। अशोक श्रीजी को पुत्री के अत्याग्रह के कारण चरण श्रीजी के साथ टोंक चातुर्मास कराया। चातुर्मास के अन्त होते-होते क्रूर काल ने अशोक श्रीजी को कवलित कर लिया। समाधि मरण के साथ स्वर्ग सिधारी।

समय अपनी गति पर था। १६६६ वि० सं० आ गया। आपने अपने गन्तव्य स्थल की ओर कदम वढ़ाये। पू० जतन श्रीजी म० सा० का शिष्याओं पर वात्सल्य भाव अत्यधिक था अत: स्वयं दादावाड़ी आ गए। कुछ दिन वहाँ निवास कर आप शहर में खैरातीलालजी की धर्मशाला में पधारी। चातुर्मास गुरुपद कज में व्यतीत किया।

इसी बीच चातुर्मास की पूर्णाहूति के समय आपने जयपुर निवासी लालचन्दजी कोचर की धर्मपत्नी एवं कुचेरा निवासी उगमराज सिंघी की वहन अधिकार वाई तथा विनीता श्रीजी म० सा० की अनुजा शान्ता बहन को दीक्षित कर क्रमशः प्रभा श्रीजी एवं पुष्पा श्रीजी नाम उद्घोषित किया।

आपने कभी सम्प्रदायवादिता को मान्य नहीं किया और आप इस मकड़ी के जाल से सदैव दूर ही रहीं। सं० २००२ में बीकानेर में मिगसर सुदी १० को मंदिर की प्रतिष्ठा सानन्द सम्पन्न करवाई। उसके पश्चात् वैराग्य वासित छोटावाई को दीक्षित कर विजयेन्द्र श्रीजी नाम रखा। इस चातुर्मास में प्रभा श्रीजी ने मास क्षमण की तपस्या की। लगातार दो चातुर्मास झुंझुनूं किये—कारण कि हृदय रोग से पीड़ित हो गई। हृदय धड़कता, जी घवराता। नाना उपचार किए पर निष्फल। कारण उपचार हुआ गैस का और रोग था हृदय का। बीमारी होने पर भी आपने विहार कर दिया। आप फतेपुर पधारीं। वहां विसनदयालजी यतिवर्य का औषधोपचार प्रारम्भ हुआ। वे अच्छे ज्ञाता थे। स्वास्थ्य लाभ शनैः शनैः होता गया। सं० २००२ का चातुर्मास फतेपुर कर स्वस्थता को प्राप्त हो आप बीकानेर पधारीं थी। विहार का विचार कर ही रहे थे कि विजेन्द्र श्रीजी को भयानक व्याधि ने आ घेरा। आखिरकार सं० २००३ का चौमासा बीकानेर किया। स्वास्थ्य लाभ न होने से सं० २००४ का चातुर्मास भी बीकानेर करना पड़ा। बीकानेर से बोथराजी की विनती पर आप गोगोलाव पधारीं। इधर तपगच्छाचार्य, पंजाव देशोद्धारक, कलिकाल कल्पतरु वल्लभ सूरिजी पधारे बीकानेर में। महावीर जयन्ती बड़ी जोरों से ठाठ वाट से मनाने का कार्यक्रम था। आपको आग्रह भरा निमन्त्रण होने से आप बीकानेर आईं। आपका हृदय-स्पर्शी मर्मभेदी भाषण हुआ। आप पुनः विहार का विचार कर ही रही थीं कि आपको पुनः निमन्त्रण आया, संघ ने निवेदन किया कि अष्टमी को स्वर्गीय आचार्य देव श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी महाराज की जयन्ती में सम्मिलित होना है। विनती को मान्य कर आप जयन्ती में सम्मिलित हुईं। सभी को आश्चर्य था कि दूसरे गच्छ के आचार्य की जयन्ती मनाने आप विहार करती हुई आयीं। और अन्य के गुरु

के आचार्य की जयन्ती मनाने के लिए रुक गयीं। यह हृदय विशालता और सम्प्रदायवादी के घेरे से बहुत दूर की बात थी।

धारा प्रवाह प्रवचन प्रारम्भ हुआ। आपने आत्माराम महाराज की गुण ग्राहकता पर अनूठा भाषण दिया। जाति पांति की भावना से दूर परस्पर समन्वय की भावना से ओत प्रोत यह भाषण था। आपकी प्रवचन शैली व समन्वय की भावना से प्रभावित हो आचार्य देव वल्लभ सूरिजी ने आपको भारत कोकिला सरोजनी नायडू के समकक्ष जैन कोकिला पदवी से अलंकृत किया तथा अपने समुदाय की साध्वियों को व्याख्यान न देने का प्रतिवन्ध भी हटा लिया।

जैतारण की जनता आपका स्वागत कर अपने आपको धन्य समझ रही थीं. कृत कृत्य मान रही थी। साथ ही वियोग की घड़ियाँ याद कर अपने को अभागी समझ रही थी। निवेदन विनती, प्रार्थनाएँ निष्फल हो रही थीं चातुर्मास के लिए। आपश्री का लक्ष्य एक ही था देहली गुरुवर्या की सेवा पहुँचना। जैतारण से विहार कर ही दिया वचनवद्ध हुए विना। बीकानेर से नागौर और नागौर से जैतारण भी इस लक्ष्य को लेकर ही आप चली थीं।

प्रस्थान कर आप व्यावर पहुँची। 'जहाँ राम वहाँ आयोध्या' आप जंगल में होती तो वहाँ भी मंगल होने लगता। शीतल पवन जहाँ-जहाँ प्रवाहित होती है शीतलता ही प्रदान करती है। आप भी जहाँ-जहाँ पहुँची, वहाँ के लोग हर्षातिरेक में उल्लसित हो जाते। ब्यावर में हिन्दुस्तान-पाकिस्तान विभाजन के समय पाकिस्तान से आए धन्नुमलजी रहते थे। विभाजन के समय हुए अत्याचार, नृशंस हत्यायें, दानवता युक्त मानव जाति का संहार, खून की बहती नदियाँ, स्त्रियों के सतीत्त्व पर कुठाराघात ने उनकी पुत्री लाजवंती को वैराग्यवासित बनाया। उस वपन हुए अंकुर पर सिंचन कर उसे पौधा

रूप दे दिया आपकी पीयूषमयी वाणी ने। ज्ञानधारा प्रवाहित हो रही थी। उसमें लाजो स्नाता बन रही थी।

जैतारण चातुर्मास समाप्ति की ओर अग्रसर हो रहा था। यकायक समाचार आये कि पू० जतन श्रीजी म० सा० का देहान्त हो गया। आपश्री पर यह वज्रपात हुआ। आप चाह कर भी देहली न पहुँच सकीं। ब्यावर में ही जैतारण वाले अड़ गये कि चातुर्मास की स्वीकृति दें अन्यथा हम सत्याग्रह करेंगे। आपने बहुत समझाया, अपना कर्त्तव्य बजाया और यहाँ तक कह डाला कि कहीं मैं अन्तिम समय गुरु से दूर न रहूं। पर संघ शक्ति के समक्ष आपको झुकना पड़ा। आपकी यही चाह थी सेवा के लाभ से वंचित न रह जाऊँ पर होनहार होकर ही रहती है। आप जानते थे कि मृत्यु नागिन सबको डसती है कोई भी इससे अछूता नहीं रहता पर दुःख इस बात का था कि अन्तिम दर्शन और सेवा से वंचित होना पड़ा। झूम गया आंखों के सामने विहार का दृश्य। जब हृदय हाहाकार कर रहा था। मन आगे बढ़ने से इन्कार कर रहा था। कदम पीछे लौट रहे थे—पर गुरु आज्ञा का खंडन करना भी आपके वस की बात न थी। यह वज्राहत करने वाला दुःखद समाचार था। इस को सहन करना बड़ा ही महंगा पड़ा। सं० २००६ आपके लिए दु:खद समाचारों से भरपूर था। फालू ग्राम में आपको समाचार मिले कि आचार्य जिन हरिसागर सूरिजी महाराज को लकवा हो गया है और स्थिति बड़ी विकट है। आप एक दिन में १५-२० मील विहार कर मेड़ता रोड पहुँच गए और आचार्य प्रवर के दर्शन लाभ प्राप्त किये। मेड़ता में उपधान तप चल रहा था। बीच में ही यह घटना घटित हो गई। कविकुल किरीट कवीन्द्र सागरजी महाराज व्याख्यान, उपधान क्रिया, आने जाने वाले को सम्भालने के सेवा में कोई त्रुटि नहीं रखते। प्रखर विद्वान्, उत्तम वक्ता होने पर भी आपकी सेवा भावना प्रशंसनीय थी।

बड़ी लगन व निष्ठा के साथ आप सेवा में हर समय तत्पर रहते। विजयेन्द्र श्रीजी की वृहद् दीक्षा भी इसी समय हुई। वे बीकानेर विज्ञान श्रीजी म० के साथ गयी थी। दीक्षा के लिए उग्र विहार करते हुए आप मेड़ता रोड आये। माल महोत्सव व दीक्षा कार्य सानन्द सम्पन्न हुए। आचार्य महाराज का स्वास्थ्य गिरने लगा। हालत चिन्ताजनक हो गई। पौष शुक्ला अष्टमी का प्रभात, लगन के साथ की जा रही सेवा सुश्रूषा भी आचार्य देव को न बचा सकी। वे प्रातः ९ बजे स्वर्गवासी हुए। सर्वत्र शोक छा गया। श्रीमद् उपाध्याय प्रवर आनन्द सागरजी महाराज को आचार्य एवं पूज्य कवीन्द्र सागरजी महाराज उपाध्याय पद से अलंकृत हुए।

८

मणिधारी जिनचन्द्र सूरि का तीर्थ धाम, भारत की राजधानी, कुतुम्ब मीनार, लाल किले पर लहराती ध्वजा से सुशोभित नगरी देहली। आबाल वृद्ध सभी की प्रसन्नता का पार नहीं। क्यों न हो खुशी, मणिधारीजी की शताब्दी का आयोजन जोर-शोर से हो रहा था। सभी तैयारियों में जुटे तन्मय दिखाई दे रहे थे। पूज्या जतन श्रीजी महाराज के स्वर्ग गमन के पश्चात् अभी तक आप देहली नहीं पधारी थीं। रायपुर चातुर्मास संवत् २०२७ में सम्पन्न कर उग्र विहार करती हुई आप देहली पधारे। चैत्र का मधु मास, आम्रमंजरियाँ को विकसित हुई देख कोयल टहुकने लगी। इधर मुनिराजों एवं साध्वी वृंद के समुदाय भी मधु मास की बहार के साथ उमड़-उमड़ कर आते देख भक्तों की तरंगें उठने लगी। पू० मुनिराज (वर्तमान गणाधीश्वर) उदय सागरजी महाराज साहब, अनुयोगाचार्य पू० कान्तिसागरजी महाराज साहब पू० व्याकरण शास्त्री दर्शन सागरजी महाराज, पू० कल्याण

सागरजी महाराज, तीर्थसागरजी महाराज, कैलाशसागरजी महाराज आदि मुनि मण्डल के साथ आर्या मण्डल से सुसज्जित नगर प्रवेश कराया गया।

चैत्र कृष्णा तेरस, चौदस व अमावस्या त्रि-दिवसीय कार्यक्रम रखा गया। अमावस को विशाल वरघोड़ा प्रमुख बाजारों में भ्रमण करता हुआ, तीर्थ धाम महरौली पहुँचा। पू० विचक्षण श्रीजी महाराज का ध्यान महरौली का जीर्णोद्धार कराने का था। जीर्णोद्धार के पश्चात् आपने श्री प्रतापमलजी सेठिया को दादा-शताब्दी के लिए प्रेरणा दी। सिंचन कार्य हुआ तो पौधा लहलहाने लगा। परिणाम-स्वरूप शानदार ढंग से शताब्दी मनाई जाने लगी। भारत के कोने-कोने से गुरुदेव के भक्त आने लगे। विशाल प्रांगण भी संकीर्ण नजर आने लगा। हजारों लाखों की संख्या में जनमेदिनी उमड़ रही थी। जिधर देखो उधर जन समुदाय ही दिखाई देता। कहीं मुनि वृंद तो कहीं साध्वी वृंद। तीनों ही दिन अनेक कार्यक्रम रखे गए थे। एक दिन सभी साधु मुनिराजों के प्रवचन हुए तो दूसरे दिन साध्वी समुदाय के भाषणों का कार्यक्रम रखा गया। महिला सम्मेलन और पुरुष सम्मेलन भी आयोजन किये गए। कई पुस्तकों-ग्रंथों का विमोचन इस अवसर पर हुआ। विभिन्न प्रस्तावों के लिए सभाएँ हुईं। दादा शताब्दी का विशिष्ट कार्यक्रम था वरघोड़ा। राजधानी में यह जुलूस विशिष्ट स्थान रखता था। जिसने देखा दांतों तले अंगुली दबा ली। दादा गुरुदेव का नाम जन-जन के मुख पर था। सभी गुरु भक्ति की मस्ती में मशगूल हो गुणगान गा रहे थे।

जिनचन्द्र सूरि महाराज मदनपाल के आग्रह से देहली पधारे थे और मात्र २६ वर्ष की अल्पवय में सं० १२२३ में स्वर्ग सिधारे। चमत्कार को सर्वत्र नमस्कार होता ही है। आपने देहान्त से पूर्व संघ

को दो बातों से सावधान किया था कि देहान्त के समय मेरे मस्तिष्क में से मणि निकलेगी जिसे दुग्ध पात्र में ग्रहण करना तथा मेरी अर्थी को बीच में कहीं भी स्थित न करना, मत ठहराना। जिस स्थान पर दाह-संस्कार करना हो उसी जगह पर रखना। पर महाराजा मदनपाल के आग्रह से महरौली में बिचलावासा दे दिया गया। अर्थी को जब उठाया जाने लगा, तब वह उठी तो क्या हिल भी नहीं सकी। यहाँ तक कि हाथियों को मजबूत रस्से बांध कर खिचवाया गया तब भी वह हिली नहीं। फलतः अन्त्येष्टि क्रिया उसी स्थल पर की गई। उसी स्थान पर दादा गुरुदेव की शताब्दी का आयोजन किया गया था। दिल्ली में हिन्दू-मुसलमान सभी मजहब दादा गुरु के प्रति श्रद्धा रखते हैं।

मणिधारी दादा चन्द्र सूरि का कार्यक्रम सम्पूर्ण सानन्द सम्पन्न होने पर आपने हस्तिनापुर की ओर प्रयाण किया।

हस्तिनापुर आज भी अपनी यशोगाथा गा रहा है कारण कि प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव ने दीक्षा के पश्चात् एक वर्ष तक अन्न जल ग्रहण नहीं किया क्योंकि शुद्ध आहार व्यवस्था से सभी अपरिचित थे। कोई आभूषण लाता, कोई द्रव्य राशि ले आता किन्तु इनसे उदर पूर्ति तो हो नहीं सकती। एक वर्ष बाद भगवान् के पौत्र श्रेयांस कुमार ने जिनको जाति स्मरण ज्ञान हो गया था, अपने ज्ञान बल से आहार विधि का ज्ञान प्राप्त किया और भगवन्त को इक्षु-रस से पारणा कराया। उसी तीर्थधाम पर आज भी वर्षीतप के पारणे होते हैं। पू० साध्वीजी श्री चन्द्र प्रभा श्रीजी, पू० मुक्ति प्रभा श्रीजी, पू० ज्योति प्रभा श्रीजी, विजय प्रभा श्रीजी एवं पू० निरन्जना श्रीजी के वर्षीतप की महान् तपस्या चल रही थी। उसकी पूर्णाहुति जी करनी थी।

नागपुर और राजनांद गाँव से उग्र विहार करते आप आ रहे

थे उसी समय वर्षी तप प्रारम्भ कर दिया। उग्र विहार तिस पर भी तपस्या, कैसी ? एक दिन निराहार व्रत और दूसरे दिन खाना, फिर उपवास। धन्य है साधु, श्रमणों को, संत जीवन को जो पद यात्रा करते हैं और तपस्या रूपी पाथेय साथ में रखते हैं। मीलों का सफर और दीर्घकालीन तपस्या। शताब्दी समारोह के सानन्द सम्पन्न होने के पश्चात् देहली से चतुर्विध संघ हस्तिनापुर रवाना हुआ।

संवत् २०२८ का वैसाख महीना। अक्षय तृतीया का दिन देखते-देखते आ पहुँचा। सभी चतुर्विध संघ के समक्ष पारणा करा लाभान्वित हुए। इक्षु रस से पात्र भरे जा रहे थे। सभी चाह रहे थे कि किञ्चित् लाभ तो हमें भी प्राप्त हो। आपकी शिष्या वर्ग में एक से एक तपस्वी है। गत वर्ष रायपुर चातुर्मास के दौरान पू० सुरन्जना श्रीजी महाराज ने मास क्षमण की तपस्या की और मणि प्रभा श्रीजी महाराज ने १६ उपवास की तपस्या की। रायपुर चातुर्मास भी अपनी एक ही मिसाल रखता है। आपकी चातुर्मास के लिए विनती बहुत ही थी। आप जहाँ-जहाँ पदार्पण करती रायपुर संघ चातुर्मासार्थ मौजूद। कोई भी ऐसा स्थान न था जहाँ रायपुर संघ की पहुँच न हो। रायपुर चौमासा स्वीकृत किया। इसी दौरान एक अनहोनी घटना घटित हुई। उस समय तेरापंथ सम्प्रदाय के आचार्य तुलसी का भी चौमासा वहीं रायपुर था। रामायण के संदर्भ से लिखी "अग्नि परीक्षा" पुस्तक पर व्याख्यान चल रहा था। मामूली सी बात पर वैष्णव जनता विद्रोह कर उठी। तिल की बात ने ताड़ का रूप ले लिया, उग्र रूप धारण कर लिया। सारे शहर में हंगामा उठ गया। दुकानें जलाई जाने लगीं। जुलूस निकलने लगे। जैन संत के पीछे इतना विद्रोह ! आपका रोम-रोम प्रकम्पित होने लगा। शोकानल सुलगने लगा। ओह एक जैनाचार्य पर यह संकट। आपका तो यह नारा सदैव रहा है "जो वीर का प्यारा वह मेरा प्यारा" और उस वीर

के प्यारे से यह वर्ताव । तीव्र ज्वर ने आ दबोचा । ओह, जिन शासन की हीलना हो रही है, जैन शब्द बदनाम हो रहा है ।

जब हंगामा होता, आप स्वयं नीचे उतर जातीं । लोगों को समझातीं । पर क्या अकेला चना भाड़ फोड़ सकता है ? दावानल एक टंकी पानी से बुझ सकता है ? आखिर आपने दूसरी युक्ति दौड़ाई । संगठन में शक्ति है । इसको अपनाने का संकल्प किया । सभी समाज के अग्रगण्य श्रावकों को बुलाया गया । सभा हुई । और उस हंगामे ने शनैः शनैः विराम लिया ।

विचारणीय प्रश्न तो यह है कि आपका उस झगड़े से लेनदेन नहीं किन्तु फिर भी जिन शासन की हीलना, निंदा आपको सहन नहीं होती । जिनशासन के प्रति आपकी कितनी निष्ठा है, कितनी आन है कि आप संकट का सामना करने को उतारू हो गयीं । रायपुर में छत्तीसगढ़ इलाके के हजारों लोग दर्शनार्थ आते । रायपुर संघ की भक्ति अवर्णनीय थी ।

□ □ □

मालपुरा कुशल गुरुदेव का तीर्थ धाम ! पूज्या महाराज श्री का साधना स्थान। नीरव एकान्त, हलचल से दूर आपको चातुर्मास के लिए पसन्द आया। सामाजिक प्रवृत्ति हर वर्ष घेरे रहती है, इस वर्ष निवृत्ति। साधना, केवल आत्म साधना, अध्यात्म साधना। आत्म विकास की साधना, अतः दिया प्रवृत्ति को विराम। प्रवृत्ति से प्रवृत्ति बढ़ती है, निवृत्ति द्वारा प्रवृत्ति को नष्ट किया जाता है। तप, जप, मौन का अवलम्बन लेकर साधना-शिखर पर आरोहण किया। चिन्तन, मनन व ध्यान की छड़ी ली। एक महीना, दो महीने व्यतीत हुए।

कटले का प्रांगण। जनमेदिनी उमड़ रही थी व्याख्यान श्रवण हेतु। दादाबाड़ी से एक किलो मीटर दूर यह स्थल। प्रतिदिन व्याख्यान इसी स्थल पर होता। यह अवस्था, फिर भी वीर का संदेश जन-जन में पहुँचाने के लिए हर पल तैयार।

व्याख्यान व सद्रुपदेशों से प्रभावित हुआ एक सिंघी परिवार। प्रतिदिन गुरु चरणों में आता। दिशाएँ बदलने लगी। मानस परिवर्तन हुआ। अन्धकार को चीर कर प्रकाश में आया। मांसाहार, रात्रि भोजन, जुआ, मदिरा का त्याग किया। इससे पूर्व प्रतिदिन मांस भक्षण, मद्य सेवन से शारीरिक हानि हो रही थी। गृह व्यवस्था बिगड़ चुकी थी। पारिवारिक सुख-चैन छीन लिया था द्यूत क्रीड़ा ने। खुशहाल जीवन उजड़ने लगा, बहारों ने मुख फेर लिया। स्त्री बच्चों की दशा दयनीय हो गयी। और एक दिन आफत का मारा चला आया गुरुपद कज में। व्याख्यान में सुना सप्त व्यसन से शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय हानि। शराब है क्या ? फलों के रस की सड़न। एक बार नजरों नजर जरा इस ओर दृष्टिपात करें। उसका निर्माण कार्य प्रत्यक्ष देखें पश्चात् उसका आनन्द लें। सत्य हकीकत है कि उससे घृणा हो जावेगी। घर में सब्जी में लट आ गई तो क्या हुआ घृणा से, नफरत से मन भर गया और उस सड़न में कीड़ों का कुलबुलाहट, उनकी हिंसा। ओह ! दया व हिंसा से मन भर जाय। इतनी हिंसा का परिणाम शराब. मदिरा। मांसाहार व शराब से होने वाली हिंसा का जो मार्मिक चित्रण किया कि अन्तःकरण दया से भर गया। सभी ने मांसाहार आदि सप्त व्यसनों का त्याग किया और वह सिंघी महाशय तो बिलख पड़े गुरु चरणों में। आह ! मेरा जीवन तो पाप से बोझिल। इस शराब से मेरा जीवन तबाह हो गया, मेरा घर बर्बाद हो गया। मेरा सर्वस्व लुट गया। मुझे उबार लो। मुझे अधः पतन से बचाओ। नरक के गर्त में जाने से बचा लो। मां ! जग हितकारिणी मां ! अब मैं उसकी शरण में हूँ। आप ही मुझे बचा सकने में समर्थ हैं, आप ही मेरे त्राता, रक्षक हैं। भाव विह्वल हो सुबकने लगा। दृश्य अनुमोदनीय हो गया। और वह मां भी गद्‌गद् हो उठी, परिवर्तन से। आश्वासन भरे शब्द स्फुट हुए—बंधु !

अनादि काल से यह जीव इसी में रचापचा है। इन्हीं संस्कारों में पनपा है। कर्मों की शृंखला में बंधा हुआ है। किन्तु उसे तोड़ने की शक्ति भी इस आत्मा में ही है। पापमय जीवन पुरुषार्थ से पुण्यशाली बन सकता है। यह आत्मा अनन्त शक्ति का स्रोत है। जागो तभी सवेरा। अंधकार से प्रकाश में आओ। प्रसुप्त चेतना को जागृत करो। धर्म कार्य से अपनी आत्मा के पाप पंक का प्रक्षालन कर लो। यह मानव जीवन ही सक्षम है पंकिल आत्मा को उज्ज्वल बनाने के लिए।

और होने लगा परिवर्तन, बदलने लगी दिशाएँ। नित्य प्रति-दिन गुरु दर्शनों को आता और धर्म क्रियाएँ करने लगा। जिन बहारों ने मुख मोड़ लिया था वे सम्मुख आ खड़ी हुईं। जीवन में सुख शान्ति व्याप्त हो गई।

इधर एक दिन जब रात्रि के अन्धकार ने अपना जाल बिछा दिया था, तमस का साम्राज्य छा गया था, यकायक गुरुवर्या श्री ने आवाज लगाई—चन्द्रकला श्रीजी!—गुरु सेवा में हर क्षण-तत्पर चन्द्रकला श्रीजी सेवा के लिए उपस्थित हुईं। कहा—विमलचन्दजी सुराणा की धर्मपत्नी मेम बाई सा० से जरा आयोडेक्स ला दो। चन्द्रकला श्रीजी आश्चर्यान्वित हो गईं। कभी जो किसी भी किस्म की मरहम पट्टी, औषधि आदि का सेवन नहीं करतीं, वे आज दवा की मांग कर रही हैं? इसी चिन्तन में पहुँच गये मेम बाई के पास जो १५-२० दिन से गुरु सेवा में मालपुरा ही निवास कर रही थीं। आपने सुना तो विस्मय से भर उठे। विचार आने लगा। हृदय धड़कने लगा, आज तक कभी कुछ मांग नहीं, आज यह अनायास ही ऐसा क्यों? पूरे दिन में न दर्द की चर्चा की न अन्य कुछ कहा—पहुँचे कक्ष में जहाँ आपके कर कमलों में माला थी। महाराज श्री! किस अंग में, किस स्थल में दर्द है, आप फरमावें मुझे ही इस सेवा

का अवसर दें। नहीं-नहीं, बस थोड़ी सी दे दो, मैं स्वयं ही लगा लूंगी। स्थान को गुप्त रखना और जिज्ञासा ने जन्म लिया। आप कृपा करके फरमावें तो सही, क्या बात है, कहां दर्द है उसका उत्तम रीति से औषधोपचार किया जाय।

अरे ! क्यों नाहक चिन्ता करते हो, कुछ नहीं स्तन पर छोटी-सी गांठ है। उसमें कई दिनों से दर्द है। आज ख्याल आ गया तो मांग लिया। क्यों, इतने परेशान हो गए। कुछ लगाऊंगी तो आराम हो जावेगा।

गांठ ! वह भी कई दिनों से। मन शंकित हो गया कहीं.....। हे प्रभु, नहीं, नहीं ऐसा न हो। इस महान् आत्मा को यह कष्ट, यह वेदना। महाराज श्री तो शांत मुद्रा में हैं, सहज आकृति है पर मन बेचैन क्यों हो रहा है ? दिल क्यों धड़कने लगा ? घबराहट क्यों होने लगी ? चिन्ता क्यों सिर पर सवार हो गई ? प्रश्न पर प्रश्न उभरने लगे। शान्ति का स्थान अशान्ति ने ले लिया। मेम बाई ने पूछा—आपको यह गांठ कब हुई, आपको इसकी जानकारी कब विदित हुई, गांठ में दर्द अत्यधिक है या कम है ?

अरे छोड़ो ना इस प्रसंग को। परेशान मत हो। चिन्ता जैसी कुछ बात नहीं इतने विह्वल न हो ओ।

पर उनका तो मन बेकाबू हो रहा था। न जाने यह मन क्यों नेष्ट की कल्पना करने लगा है। मानव मात्र का यह स्वभाव है कि उसे अनिष्ट की कल्पना जल्दी ही घेर लेती है। पुनः प्रश्न किया—आप बतावें तो सही, यह गांठ कब से है, कितनी बड़ी है, कैसा दर्द है ?

आखिर जब प्रश्न पर प्रश्न होने लगे तब सोचा बिना समाधान

किए छुटकारा होने वाला नहीं। कहा कि जब सुरेखा श्री के दादा सिरहमलजी ताराचन्दजी संचेती ने संघ निकाला था जयपुर से मालपुरा का, तभी से यह गांठ महसूस हो रही है। इसमें दर्द भी होता है। उस समय यह चने की दाल जितनी थी और आज यह बोर जितनी है। घबराने की कोई बात नहीं, गुरुदेव सब ठीक कर देगा!

मशीन की तरह मस्तिष्क तीव्रता से घूमने लगा। फाल्गुन मास में जयपुर से संघ निकला। सुरेखा श्रीजी व विमलयशा श्रीजी की दीक्षा पर मातु श्री पूज्या विज्ञान श्रीजी महाराज की लकवे की लम्बी व्याधि के साथ स्वर्ग गमन करने पर आप जयपुर पधारे थे। चातुर्मास के दौरान संयमपूर्णा श्री एवं सुरेखा श्री को मासक्षमण की, सम्यग्दर्शना श्री एवं विमलयशा श्री ने अट्ठाई की, वयोवृद्धा प्रभा श्रीजी को १६ उपवास की तपस्या करायी। चातुर्मास के पश्चात् विद्युत् प्रभा श्रीजी को दीक्षा दी। जयपुर से मालपुरा संघ निकला, उसी समय से मुझे इस गांठ की कुछ-कुछ अनुभूति हुई। तभी से यह निरन्तर बढ़ती जा रही है और वेदना भी निरन्तर जारी है।

वाणी में न लुकाव है न छिपाव। स्पष्ट जैसी है वैसी ही कह देना, घटना बयान कर देना आपश्री का स्वभाव है। देहली का एक प्रसंग जो कि सत्यवादिता को इंगित करता है। छोटी दादावाड़ी का सुरम्य स्थल। आप वहाँ मातु श्री की व्याधि के कारण स्थित थीं। अट्ठाई महोत्सव हो रहा था। इसी दरम्यान चौके की देख-रेख सौंपी गई थी सुधा संचेती को। एक दिन की बात। गुरुवर्या श्री का स्वभाव था हर वस्तु का निरीक्षण करना, भ्रमण करना। आप भ्रमण करते-करते जहाँ चौका चल रहा था, उधर मुड़ गये। और सुधा थी तल्लीन रोटी सेकने में। भावों का बाजार चढ़ा था। आज यह रोटी गुरुवर्या श्री उपयोग में लें तो कितना अच्छा हो। मेरी भावना क्या सफल हो

सकती है ? इतने में गुरुवर्या श्री सम्मुख दृष्टिगोचर हुए। भावना व्यक्त की—महाराज श्री आज तो भावना यह है कि यह रोटी आपश्री सेवन करें। भावावेश में ध्यान कुछ नहीं था। प्रतिबन्धता का खयाल न था और आपश्री करते थे दूसरों की भावनाओं की कद्र। किसी की भावना को ठेस न पहुँचे। भावना कुण्ठित न हो जाय। आपने फरमाया बच्चू ! यह मुझे पच नहीं सकेगी क्योंकि इसमें घी ज्यादा है। महाराज श्री कहाँ है घी ज्यादा ? इस पतली रोटी में अधिक घी का समावेश हो नहीं सकता।

गुरु श्री बोल उठे—बेबी देखो, खयाल रखो। यदि अपने वचनों को सिद्ध करना है अर्थात् वचन सिद्धि करनी है तो सूक्ष्म असत्य का ख्याल रखो। तुम ही बताओ क्या इसमें अपेक्षाकृत घी ज्यादा नहीं है ? वह क्या बोलती। बोलती बंद हो गई। जुबान मूक हो गई। गुरुवर्या श्री फरमाते जा रहे थे वीर का संदेश क्या है—सत्य बोलना वीर प्रभु ने ही नहीं हर महापुरुष ने यही फरमाया है कि सदा सत्य बोलो। तो फिर सूक्ष्म झूठ भी क्यों बोलना। हम वीर प्रभु के पथ के अनुगामी हैं। हमेशा ध्यान रखना है कि महाव्रतों का खण्डन न होने पावे।

आपने सत्य हकीकत का बयान कर दिया। जैसी स्थिति थी, स्पष्टतया कह दिया। हलचल मच गई। उसके मस्तिष्क में घूम गया दृश्य फाल्गुन महीने का। अभी तो ६ महीने व्यतीत हुए हैं और इतना विस्तार हो गया। चने की दाल की जितनी थी गांठ और हो गई बोर के समान। इसका इलाज हो जाना चाहिये। भविष्य में क्या हो, यह किसने देखा ? एक बार डॉक्टर से परामर्श अवश्य करना चाहिये। डॉक्टर को दिखा देना चाहिये। आपने जयपुर टेलीफोन कर दिया। विमलचंदजी सुराणा को सर्व स्थिति से अवगत किया और कहा आप शीघ्रातिशीघ्र डॉक्टर को लेकर मालपुरा आवें।

दूसरे दिन सुराणा साहब डॉक्टर को लेकर मालपुरा जा पहुंचे। गुरुवर्या श्री तो डॉक्टर को देखकर हैरत में पड़ गये। किसने वहाँ तक समाचार दिया, किन्तु तत्क्षण स्मरण आया मेम बाई सा० से कल ही तो कहा था और आज डॉक्टर आ भी गया। आपने मुख से सर्व परिस्थिति से अवगत कराया किन्तु पुरुष स्पर्श से इन्कार कर दिया। उसी समय लेडी डॉक्टर को फोन करके बुलवा लिया पर गुरुवर्या श्री को इसका संकेत भी नहीं होने दिया। लेडी डॉक्टर ने देखा और गुप्त रूप से डॉक्टर को कहा कि यह भविष्य में कैंसर का रूप ले सकती है। कैंसर इस महान् आत्मा को, ओफ ! कितनी वेदना, तड़फन उसकी भंयकरता ने, उसके विकराल रूप ने परेशान कर दिया। महाराज श्री इसका ऑपरेशन करवा लें अभी तो यह छोटी सी है, इसका समूल नाश किया जा सकता है। न रहेगा बांस और न बजेगी बांसुरी, डॉक्टर साहब ने निवेदन किया। किन्तु महाराज श्री ने कहा—नहीं मुझे ऑपरेशन नहीं करवाना। आप क्यों इतनी चिन्ता करते हैं, इतने परेशान हो रहे हैं, यह तो ठीक हो जावेगी। यह वृद्धावस्था है। क्यों इस नश्वर शरीर का छेदन-भेदन करवा कर कर्म बंधन किया जाय। तब डॉक्टर साहब ने कहा अच्छा आप ऑपरेशन करवाना न चाहें तो ठीक पर इसकी जांच तो करवालें। इसका छोटा सा टुकड़ा काट कर जांच के लिए भेज देंगे। पर आपको वह भी नहीं गंवारा क्योंकि आपने पूर्व ही इन्कार कर दिया था छेदन-भेदन के लिए।

अब क्या किया जाय ? किस प्रकार समझाया जाय, क्या उपाय किया जाय। उन्होंने सोचा, इस रोग की भयंकरता से महाराज श्री को परिचित कराया जाय ? इस प्रकार विचार करके कहना प्रारम्भ किया—महाराज जी ! आप ऑपरेशन न करावें तो ठीक पर इसकी जांच तो करवा ही लेना चाहिये। क्योंकि यह किस रोग की गांठ है

विदित हो जावेगा। अधिकांशतः इस प्रकार की गांठ कैंसर रोग की होती है जो कि अत्यन्त भयंकर रोग है। और जब इसका विस्तार हो जाता है तो निदान होना भी संभव नहीं। अभी तो आपको अल्प वेदना होती है किन्तु रोग के विस्तार के साथ वेदना भी बढ़ती जाती है। रोम-रोम वेदना से भर जाता है।

रोग का विद्रूप भी आपको विचलित न कर सका। उसका विकराल रूप अट्टहास करते सम्मुख नृत्य कर रहा था किन्तु आपका एक रोम भी उद्विग्न न हो सका। न जाने कौन सी शक्ति आपको एकस्थ किये हुए थी। डॉक्टर, सुराणा सा०, श्रीमती सुराणा, शिष्या समुदाय सभी आपको समझाने के लिए प्रयत्नशील थे। किसी भी तरह औषधोपचार के लिए आप तैयार हो जाय पर महापुरुष का वचन कभी असिद्ध नहीं होता। आपने एक बार जिसके लिए निषेध कह दिया, फिर उसको स्वीकार नहीं किया।

सुराणाजी के मस्तिष्क में संकल्प-विकल्प का ज्वार उठा! ओफ! इतना भयंकर रोग है फिर भी इलाज कराने को तैयार नहीं। आज से एक वर्ष अर्थात् बारह मास पूर्व जब आप चातुर्मास हेतु जयपुर में विराजित थीं, तब भी आपको जब मलेरिया बुखार ने आक्रान्त कर लिया, तब भी आप औषधोपचार को तैयार न हुए। उस समय का दृश्य नेत्रों के समक्ष घूमने लगा।

शिवजी राम भवन खरतरगच्छ पेढ़ी से टेलीफोन आया कि महाराज श्री को तेज ज्वर ने घेर लिया है, शरीर प्रकम्पित हो रहा है। डॉक्टर को लेकर शीघ्र पधारें। सायंकाल का समय था, सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था। इधर जिसे समाचार मिला, वह डॉक्टर के लिए दौड़ पड़ा। महाराज श्री का सारा शरीर कांप रहा था और हाथ में माला चल रही थी। तीन डॉक्टर कमरे के बाहर आकर खड़े

हो गए पर हिम्मत नहीं हो रही थी आगे बढ़कर कुछ पूछने की। क्योंकि महाराज श्री ने स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया औषध सेवन करने के लिए। आपश्री ने फरमाया था—आप मुझे देखने के लिए आये हैं देख लीजिए, अच्छी तरह निरीक्षण कर लीजिए, पर मैं दवा नहीं लूंगी। तब चिकित्सकों ने कहा कि विना औषध चिकित्सा किस प्रकार सम्भव है ? आप औषध सेवन करेंगे तभी आराम हो पायेगा। किन्तु आपको दृढ़ निश्चयात्मक संकल्प से कोई नहीं डिगा सका। आपश्री फरमा रहे थे—आराम इस शरीर को तो कभी मिलने वाला है नहीं, यह तो व्याधि-मंदिर है। यदि पुण्योदय हुआ, शाता का उदय होगा तो स्वयमेव इसमें सुधार हो जाएगा। कर्मों का कर्जा चुकाये विना उऋण कभी नहीं हो सकेंगे। इसे यहीं पर उऋण होना है। उस ऋण को यहाँ पर दफनाना नहीं है, यहीं पर उभराना है। आ जावे इनको जितना आना है। मैं तो स्वागत के लिए तत्पर हूँ। अभी मुझमें समझ है, मुझे वीतराग वाणी से कुछ ज्ञान मिला है। मैं शान्ति से इनको भोग लूंगी पर अज्ञान दशा में तो रोना पीटना हो सकता है जो कि और कर्मों को निमन्त्रण देना है। क्या आप मुझे उऋण न होने देंगे ?

डॉक्टर चकरा रहे थे। उनका चिकित्सा शास्त्र असिद्ध हो रहा था क्योंकि हर मरीज चाहता है कि येनकेन प्रकारेण उसे शान्ति लाभ हो। रोग से, वेदना से, तड़फन से, बेचैनी से मुक्ति हो और एक आपश्री हैं जो और उसका स्वागत करने को तत्पर हैं। यह कैसी विडम्बना है ? कैसा जीवन के साथ संघर्ष है ? सभी हताश व निराश थे, किया क्या जाय ? यही प्रश्न हर व्यक्ति की जिह्वा पर था। अन्तत: निराश हो डॉक्टर चले गए।

बुखार मलेरिया का था। जब सूर्य मध्याह्न का होता, अपने

गमन की राह पर कदम बढ़ा रहा होता, उस समय चार-पांच बजे अपना आक्रमण कर देता और आपश्री पहले ही स्वागत के लिए तैयार रहते। जैसे-जैसे शरीर में हलचल प्रारम्भ होती, आपश्री हाथ में माला ले लेतीं।

आप वर्षों से उवसग्गहरं स्तोत्र एवं साथ में ही नवकार मंत्र की अखंड माला प्रतिदिन फेरते थे। लगभग सवा घंटा उसमें, प्रभु स्मरण में व्यतीत होता था। जब बुखार आता उस समय माला ग्रहण कर लेते और वह सवा घंटे की माला अपने समय में और बढ़ोतरी कर लेती, कभी दो घंटे तो कभी अढ़ाई। संध्या का समय हो जाता। चारों आहारों का त्याग करने की वेला आ जाती। सभी चाहते थे कि महाराज श्री दो घूंट पानी तो ले लें क्योंकि मलेरिया की गर्मी और प्रातःकाल होवे तब तक पानी का त्याग रहता। किन्तु अधिकांशतः आप पानी ग्रहण नहीं करते। और चारों आहार का प्रत्याख्यान कर लेते।

रात्रि के समय आपका चिन्तन चलता रहता। बुखार की अवधि तो प्रारम्भ में चार-पांच घंटे रहती, किन्तु तीव्र ज्वर समूचे शरीर का सत्व निकाल लेता, अवयव अस्तित्वहीन हो जाते। उस अवस्था में जब तक आप जागृत रहतीं आपका चिन्तन चलता किंवा साध्वी-वर्ग को उपदेश दिया जाता। लघुतम शिष्याओं को व्याख्यान शैली का निर्देशन दिया जाता। स्वनाम धन्या पूज्या सज्जन श्रीजी महाराज जो कि वय में आपके समानान्तर, विदुषी हैं, आपसे चर्चा किया करतीं।

प्रातः काल में (सुराणाजी) पहुंचा पुनः आपकी सेवा में। रात्रि किस प्रकार व्यतीत हुई होगी इस-ज्वर से अतिक्रमित तीव्र वेदना में। किन्तु आश्चर्य हुआ कि आप तो सदैव की भांति पाट पर

विराजमान ज्ञान, ध्यान स्वाध्याय में रत थीं। आपके हाथ में पुस्तक थी और आप स्वाध्याय में लीन थीं। कहाँ रात्रि की घटना और कहाँ यह दृश्य ! कितना परिवर्तन हो गया था वातावरण में। मानो कुछ हुआ ही न हो। कुछ भी बनाव न बना हो। मैंने जाकर जब सुख-शान्ति पूछी तब आप ने प्रसन्न मुद्रा में कहना प्रारम्भ किया—"बंधु ! मैं तो पूर्णतया स्वस्थ हूँ। आत्मा को कभी रोग लगा है ? वह तो सदैव आरोग्य है। कर्मों से संलग्न हो इस शरीर के संसर्ग से हम अपने आपको रोग ग्रसित मानने लगते हैं जबकि रोगिष्ट तो शरीर होता है और इस समय तो उस ज्वर ने भी जो कि रात्रि को हावी था, अपनी चादर समेट ली है। अभी कुछ भी शिकायत नहीं। उसकी छाप स्वरूप कमजोरी अवशेष है। वह भी शनैः शनैः दूर हो जावेगी। आप चिन्ता को दिमाग में स्थान न दें।"

मैं सोच रहा था आप में आत्मबल (will power) कितना है ! आत्म-शक्ति के कारण आपका शरीर रोगी होने पर भी आप स्वयं को निरोगी महसूस कर रहे हैं। कितनी महानता है, कितनी विशालता है आपके जीवन में ! मैं नतमस्तक हो गया, श्रद्धा से मन झुक गया।

मैंने डॉक्टर साहब से निवेदन किया और सर्व हकीकत वर्णन की उस मलेरिया बुखार की। किन्तु डॉक्टर साहब ने कहा कि वह तो मियादी बुखार था किन्तु यह रोग तो इतना क्रूर है कि नाम से ही दिल दहल जाता है, हृदय कांप उठता है। यह कैसे सह्य हो सकेगा ? आज प्रत्यक्ष हम देख रहे हैं इसके जघन्य रूप को। जो समय पर नहीं सम्भलते वे किस प्रकार इस रोग के वशीभूत हो तड़फते-तड़फते अनन्त वेदना को वेदन करते हुए काल के ग्रास बन जाते हैं। यदि समाज आपको मजबूर करेगा तो संघ की बात को

आप नकार नहीं सकेंगे। आप सभी विनती कीजिए, निवेदन कीजिए और न मानें तो सत्याग्रह कीजिए। आप जयपुर आने को मजबूर कर दीजिए। जयपुर में इलाज की सुगमता रहेगी और सुचारू जांच भी हो सकेगी।

कुछ दिन पश्चात् सर्व संघ आपके समक्ष उपस्थित हो गया। क्योंकि सर्वत्र गांठ की चर्चा हो गयी थी। जो भी दर्शनार्थ आता आपसे ऑपरेशन के लिए निवेदन करता। किन्तु आप सभी को प्रेम से समझा देतीं कि मुझे यह पसन्द नहीं।

चातुर्मास समाप्त होने जा रहा था। आपने योजना बनाई थी बिलाड़े दादा गुरुदेव के दर्शनार्थ जाने की, किन्तु भावी के लेख में कुछ और ही लिखा था। सर्व संघ जयपुर आ पहुँचा विनती के लिए।

अपने प्रेरणा के स्रोत, आराध्य, पूज्या को वेदना को वहन करते हुए कैसे देख सकते थे? वेदना तो कोई किसी की ले नहीं सकता, न ही पीड़ा के भार को हल्का कर सकता है पर हाँ, सेवा सुश्रूषा व चिकित्सा अवश्य कर सकता है। आपने संघ से विनम्र प्रार्थना की कि मुझे दादाजी के दर्शन करने हैं, जाने की अनुमति दें। बिलाड़ा एक छोटा सा गाँव, वहाँ किस प्रकार परिचर्या हो सकेगी? नहीं, नहीं, हम हरगिज नहीं जाने देंगे। आप किस प्रकार जा सकेंगी? हम रास्ते में सो जावेंगे। हमारा उल्लंघन करके आप जा सकेंगी? आप अपना समय निवृत्तिमय व्यतीत करना चाहती थीं, हलचल से दूर एकान्त स्थल में चिन्तन करना चाहती थीं, पर आपको मजबूरन जयपुर आना ही पड़ा। संघ का बहुमान, उनके सत्याग्रह ने आपको मजबूर कर दिया जयपुर आने को। जयपुरवासी सोच रहे थे कि जयपुर पहुँचने पर आपका औषधोपचार भलीभांति हो जाएगा

पर गुरुवर्या ने संघ समक्ष कहा—आप मुझे वचन दें तब मैं जयपुर चलूंगी। वचनबद्ध कर लिया कि वहाँ पहुँचकर आप मुझे औपधोपचार के लिए बाध्य न करेंगे। भावनाओं पर कुठाराघात हुआ पर क्या करें. स्वीकृत करके कहा आपकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी कार्यवाही नहीं होगी। आपश्री का दृष्टिकोण यह था कि मेरे जयपुर पहुँचने पर सभी जगह शांति हो जावेगी। भारत के कोने-कोने से पत्र पर पत्र, तार पर तार आ रहे थे कुशल गुरु की तीर्थ भूमि मालपुरा पर कुशलता के। जयपुर जाने पर सोचेंगे कि वहाँ चिकित्सा हेतु पधारे हैं। सभी भक्त जन अपने भगवान् के लिए चिन्तित हो गये थे।

क्यों न हो चिन्ता। संघ के लिए, समाज के लिए, शासन के लिये आपने क्या नहीं किया ? आप सदैव यही फरमाती थीं कि तन, मन, धन है शरण प्रभु के अर्थात् आपका सर्वस्व प्रभु को समर्पित था। आप स्वयं को सेविका समझती थीं, वीर प्रभु की। और सेवक मालिक की आज्ञा के लिए, सेवा के लिए हर पल तैयार। हर क्षण तत्पर। और संघ उन्हीं प्रभु द्वारा निर्मित तीर्थ। संघ के कल्याण के लिए, विकास के लिए, उत्थान के लिए आपने रात-दिन एक किया। न दिन देखा, न रात। हर पल, हर छिन संघ की, शासन प्रभावना का कार्य चलता रहता। न खाने की चिन्ता न पीने की फिक। बस काम ही काम। आराम का तो नाम नहीं। 'आराम तो हराम है' यह सिद्धान्त आपने अपना लिया था। कष्ट–मुसीवत आने पर भी आप नहीं घबराते और कर्त्तव्यच्युत नहीं होते।

जिस समय आप कुलपाक तीर्थयात्रा कर विजयवाड़ा होते हुए गंटूर पधार रही थीं, एक ऐसी ही अनहोनी घटना घटित हुई कि जिससे संघ को तो क्या मातु श्री विज्ञान श्रीजी म० को भी विदित नहीं होने दिया।

□ □ □

१०

घटना उस समय की है कि जिस दिन आप का गंटूर में प्रवेश होने वाला था। स्वागत की तैयारियाँ जोर-शोर से हो रही थीं। आप श्री का प्रवचन मध्य बाजार में रखा गया था। कार्यक्रम था जिन-शासन की अधिकाधिक शोभावर्द्धन हेतु जुलूस को सर्वत्र घुमाया जाय पश्चात् बड़े बाजार में व्याख्यान रखा जाय। आपको तो इसमें आपत्ति का प्रश्न ही नहीं था। कदम गंटूर की तरफ जाने वाली सड़क पर बढ़ रहे थे। कुछ साध्वीजी आगे थीं तथा कुछ पीछे, वयोवृद्धा विज्ञान श्रीजी म० सा० के साथ। आपके साथ भी ३-४ साध्वीजी चल रही थीं। माला हाथ में थी अजपाजाप में मस्त सिंह चाल से आप आगे बढ़ रही थीं। यकायक पीछे से एक कुत्ता आया और आपकी जंघा पर काट खाया। खून की धारा अविरल प्रवाहित होने लगी। साध्वीजी ने पानी में पट्टी भिगो कर बांध दी। पर औषध का कार्य पानी तो कर नहीं सकता। रक्त प्रवाह ने अपना रुख बदला नहीं

वह बंद न होकर निरन्तर बढ़ता ही रहा और पट्टी पर पट्टी बंधती चली गई। सभी शिष्या वर्ग को मौन रहने का संकेत दे दिया गया। शिष्या वर्ग आपकी वेदना से विकल हो रहा था, पर आदेश दे दिया गया था, मूक रहने का तो भला किस की हिम्मत थी जो मातु श्री से भी कह सके। उनके कानों में इस घटना की भनक तक न पड़ी।

जोर-शोर से भावभीना स्वागत हुआ। सारा नगर शोभा यात्रा के लिए शोभायमान किया गया था। वंदनवारें, दरवाजे झंडों आदि का निर्माण किया गया था। मानो कोई बहुत बड़ा जुलूस निकल रहा हो। आपश्री को इसका न तो आकर्षण था न ही चाह थी। वैसे भी सर्वत्र इसी भांति स्वागत, सम्मान होता था पर गंटूरवासियों के लिए तो यह प्रथम घटना थी। वे तो हर्षोल्लास में नाच रहे थे। हर्ष हिये में समा नहीं रहा था। अबोध प्राणियों को क्या मालूम था हमारी उपासिका असह्य वेदना को वहन करती आगे बढ़ रही है। जो निर्धारित कार्यक्रम था उसमें किञ्चित मात्र भी रद्दोबदल न हो पाया। यद्यपि संघ आपकी वेदना को प्राथमिकता देता पर आपने वेदना को प्रकट ही नहीं होने दिया।

सभी बाजारों में घूमता हुआ जुलूस पहुँचा मध्य बाजार में जहाँ कि प्रवचन का कार्यक्रम रखा गया था। आपका मर्मस्पर्शी हृदयग्राही प्रवचन सुन सभी आनन्द विभोर हो उठे। आपके चेहरे पर न तो वेदना की टीस थी और न ही वाणी में विकृति थी। वही मुद्रा, वही धाराप्रवाह शैली, वही प्रसन्नता।

लगभग एक घंटे बरसती पीयूषवाणी ने विराम लिया, किन्तु भीतर हो रहे रक्त के धारा प्रवाह ने विराम नहीं लिया। उसे कब तक दबाया जा सकता था? अधो वस्त्र खून से लबालब भर गये। इतना रक्त, कहाँ से? कैसे? कब? यही प्रश्न सबकी जिह्वा पर था।

इसका उत्तर दिया आपने नहीं, किन्तु आपकी मुस्कुराहट ने, वेदना से, पीड़ा से आपश्री नहीं, परन्तु पीड़ित हो रहा था जन-समुदाय। शिष्या वर्ग के नयन मूक याचना कर रहे थे घटना जाहिर करने को। आखिर, राज कब तक छिपा रह सकता था ? रक्त के चिह्न मस्तिष्क में उभरने लगे। आखिर सर्व हकीकत का कथन करना पड़ा। सभी श्रद्धा से नतमस्तक हो गए। आपका धैर्य, साहस व आत्मबल सबकी जुबां पर था।

गंटूर की गर्मी। मानो तप्त ज्वालामुखी फूट पड़ा हो, भास्कर ने अपनी रश्मियां एकत्र कर गंटूर में ही बिखेर दी हों। धरा प्रचण्ड ताप उगल रही थी। वातावरण उष्मता से भरपूर था। आपका कोमल शरीर तो नवनीत के सदृश्य था। ताप सहने में अशक्य पर उस भीषण ताप को भी आपने सहन किया।

जयपुर संघ पूर्ण रूप से परिचित था आपके साहस, धैर्य व आत्मबल से। गंटूर में कुत्ते का दंश इसी का परिचायक था। आप जयपुर पधारीं। अन्य स्थानों से संघ प्रमुख श्रावकों का आवागमन प्रारम्भ हो गया था। सभी आपको नजरों नजर देख इन नेत्रों को शान्त करना चाहते थे। पर जो भी निगाहें डालता, आपकी वेदना से दुःखी, असहाय स्वयं को समझता, क्योंकि कोई चारा पास में न था। सभी आगन्तुक महानुभाव प्रयास करते, बाध्य करते ऑपरेशन के लिए किन्तु आपने तो वीर-वाणी का सम्बल ग्रहण कर लिया था। सभी को अपने अकाट्य तर्कों से निरुत्तर कर देतीं।

चातुर्मासीय दिवस नजदीक आने लगे। आपकी भावना विचरण की थी पर जावे कैसे ? मालपुरा व अजमेर संघ प्रमुख विनती के लिए पधारे, पर जयपुर संघ समर्थ संघ समाज था। आपश्री ने विलाड़ा तीर्थ-यात्रा की भावना व्यक्त की। तब सभी ने एक स्वर

से विनम्र निवेदन किया कि आपको जब स्वास्थ्य लाभ होगा तभी प्रयाण करने देंगे। आप इलाज करवा लीजिये, हम सहर्ष आपको जाने देंगे पर जब आप हमारी भावना पूर्ण नहीं करते हैं तो हम इस हालत में आपको कदापि नहीं जाने देंगे। हम आपको यहाँ रोक कर रखना नहीं चाहते, आपको स्थिरवास नहीं कराना चाहते। हमारे तो यही अरमान हैं कि आप विचरण करती रहें, शासन सेवा करती रहें पर वह कब ? जब आप पूर्णतया स्वस्थ हों।

संघ के अत्यानुरोध से आपने मात्र होम्योपैथिक इलाज प्रारम्भ किया ताकि अन्य औषध के लिए बाध्य न किया जाय किन्तु वह औषध ग्रहण करतीं अवधि समाप्त होने के पश्चात्। डॉक्टर कहते—आज लेने की दवा आज ही ग्रहण करें पर आप उसे २-३ दिन बाद सेवन करतीं। आप का तो लक्ष्य ही बन गया था निर्विचिकित्सा।

सं० २०३५ का चातुर्मासिक लाभ श्री माणकचन्दजी गोलेछा लेना चाहते थे। गोलेछा सा० की वर्षों से भावना थी कि भगवती सूत्र (विवाह प्रज्ञप्ति) का वाचन चातुर्मास में हो। भगवतीजी का वाचन यानि कि नित्य प्रतिदिन सुवर्ण चांदी की गहुँली, धूप, दीप अक्षत सम्मुख रखना, पूजन सम्मान करना।

गांठ क्षिप्रगति से विकास की ओर बढ़ रही थी। इधर वेदना पीड़ा भी द्रुतगति से वृद्धि को प्राप्त हो रही थी। आप पसन्द करती थीं दादाबाड़ी स्थल। प्रतिदिन सायंकाल दादाबाड़ी की ओर प्रस्थान हो जाता एवं प्रातः आकर व्याख्यान में विराजतीं। इस समय गांठ अनार का रूप ले चुकी थी। इस वेदना में भी सदैव एक मील जाना व प्रातः लौट कर व्याख्यान देना। आजकल के स्वस्थ बालकों को एक फर्लांग चलना होगा तो किसी-न-किसी वाहन का अवलम्बन अवश्य लेंगे किन्तु आपकी यह उत्तरावस्था, साथ लगी भयंकर व्याधि, तो भी आप

हिम्मत में अपनी ही सानी रखती थीं। इतनी अस्वस्थता के बावजूद भी आप समाज को देती ही रहीं, देती ही रहीं। अपनी पीयूषवाणी की धारा से संसार में निमग्न प्राणियों को मज्जित करती ही रहीं। अपनी सुख–सुविधाओं की ओर तो जरा भी ध्यान नहीं गया। समाज की दुविधा स्वयं की दुविधा, संघ की सुविधा स्वयं की सुविधा। प्राणिमात्र के प्रति दिल में दया, करुणा एवं वात्सल्य। कितने ही भूखों को भोजन, प्यासों को पानी तथा नंगों को वस्त्र दिलाये। जरूरत मंदों की जरूरतें पूरी कीं। जो बेकार थे उन्हें समाज के व्यक्तियों से कह कर काम दिलाया। असहायों, अनाथों और वृद्धों की भलाई के लिए भी आपने बहुविध प्रयत्न किये जिसके प्रतीक हैं स्थान-स्थान पर खोले गये कल्याण केन्द्र व फंड। जिनदत्त सूरि सेवा संघ मद्रास में खुलवाया जिसकी शाखाएँ स्थान-स्थान पर हैं। जन्मभूमि अमरावती में श्री सुवर्ण सेवा फंड एवं देहली में सोहन श्रीजी विज्ञान श्रीजी कल्याण केन्द्र, जिसकी जयपुर में भी शाखा है।

जिनके पास जीवन जीने के साधनों का अभाव है, उनको ये समितियाँ साधन देती हैं। जो बालक पढ़ लिख नहीं सकते उनकी फीस का प्रबन्ध इनके द्वारा किया जाता है। आप चाहतीं कि हर व्यक्ति का नैतिक स्तर जहाँ उच्च हो वहाँ शैक्षणिक स्तर भी उच्च होना चाहिये। आपके विचार आधुनिक युग से मेल खाते थे। धार्मिक रूढ़िवादिता से आप कोसों दूर थीं। स्थान-स्थान पर पाठशाला खुलवाना इसी का द्योतक है।

जीरण ग्राम का छोटा-सा समाज। योजना बनाली गुरुवर्या श्री के साथ बड़ी-पार्श्वनाथ पद यात्रा की। उमंग और उल्लास के साथ आए गुरु चरणों में। भाव व्यक्त किये—महाराज श्री यह संघ चाहता है बड़ी-पार्श्वनाथ का एक संघ निकाला जाय आपकी निश्रा में।

चिन्तन प्रारम्भ हुआ। यह छोटा सा ग्राम, गिनती के यहाँ घर हैं। संघ में व्यय होगा। इन सभी ने एक बार नहीं अनेक बार यात्रा की हुई है वही-पार्श्वनाथ की। अतः क्यों इस समय खर्च किया जाय ? बेहतर तो यही होगा कि यह रुपया ग्रामोत्थान में लगाया जाय। घूम गया दृश्य आँखों के सामने छोटे-से स्कूल का। कितनी दयनीय दशा है।

सभी श्रावकों को सम्बोधित करते हुए आपने फरमाया—बंधुओ ! संघ निकालने में पुण्य होता है यह माना, किन्तु आप सभी की पार्श्वनाथ की यात्रा की हुई है, एक बार नहीं, अनेक बार। बेहतर यह होगा कि संघ पर होने वाला यह व्यय आप पाठशाला हेतु कर देवें। पाठशाला कितनी जीर्ण शीर्ण अवस्था में है। आपको यदि समाज समुन्नत करना है तो सर्वप्रथम नींव को सुदृढ़ बनाना होगा। बालकों में संस्कारों की नींव सुदृढ़ होगी तो उनका विकास समुचित होगा और आपका ग्राम नैतिक पतन से बचा रहेगा। इधर आज का युग भी मांग कर रहा है शिक्षित समाज की। ज्ञान सामाजिक विकास के लिए अत्यावश्यक है। मैंने तो आपको एक सुझाव दिया है, आप विचार कर लें। उचित लगे वैसा करें।

आपकी व्यवहार कुशलता तो कमाल की है। आध्यात्मिक पक्ष जितना बलवान है, व्यवहार पक्ष भी उतना ही मजबूत है। जीवन के भी दो पहलू हैं और सिक्के के भी दो पहलू हैं। सिक्के के दोनों तरफ छाप बराबर होगी तभी उसका मूल्य अंकन होगा बाजार में, अन्यथा नकली सिक्का घोषित होने पर दंडित भी हो जाना पड़ता है। जीवन के दो पहलू अध्यात्म व व्यवहार हैं। आध्यात्मिकता के साथ व्यावहारिकता का होना सोने में सुहागा है, किन्तु जिनने आध्यात्मिक पक्ष का अवलम्बन लिया और व्यवहार पक्ष को पूर्णतः

विराम दिया, वे पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकते। और व्यवहार को ही जिन्होंने मान्यता दी—वे भी खरे नहीं उतर सकते। जैन दर्शन ने मोक्ष मार्ग व्यवहार और निश्चयमय ही माना है।

सत्य का तथ्य निकाल कर आपश्री ने सम्मुख रख दिया। आपकी वाणी अन्तरस्थल में लगे बिना न रहती।

जीर्ण समाज वैमनस्य के कारण छोटे-छोटे दलों में विभाजित हो गया था। बात सामान्य थी। कुछ बतंगड़ बन कर मामला पेचीदा हो गया था। गुत्थियाँ सुलझने की कोशिश में उलझती जा रही थीं। आपश्री के संगठनयुक्त प्रवचन ने दल बंदी की जड़ों को हिला दिया और प्रवचन के दौरान ही फूट की शृंखलाओं को भग्न कर सभी आपस में प्रेम से गले मिले।

इससे पूर्व छोटी सादड़ी में चंदनमलजी नागौरी ने गुरुवर्य्या श्री को ध्यान दिलाया था हो रही पार्टी बाजी की ओर और अनुरोध किया कि आपश्री ही इसे इस गांव से बाहर धकेल सकने में समर्थ हैं। गांव में इस फूट के कारण बेटी व्यवहार व परस्पर आना-जाना तक बंद है।

आपने अपनी ओजस्वी, प्रेम से परिपूर्ण अमृतवाणी से उस फूट को समाज से बाहर निकाल कर प्रेम की बांसुरी बजा दी। जलगांव में तो यहाँ तक बात पहुँच गई कि कोई फूट का त्याग करने को तैयार नहीं हुआ। अन्तर से चाहते सभी थे कि इस फूट का बहिष्कार हो, किन्तु पहल कौन करे? अहं को छोड़े कौन? जब कोई तैयार नहीं हुआ तब महाराज श्री ने घोषणा कर दी विहार की। रविवार को होने वाला विहार तीन दिन पूर्व कैसे? आपश्री ने फरमाया इस वैर-विरोध में रुक कर क्या करूँगी? संतों के निकट मैत्री निवास

करती है। प्रेममय वातावरण में संतों को रहना चाहिये। अतः मैं आज सायं यहाँ से विहार करने का विचार कर रही हूँ।

ओह ! प्यासे के निकट पानी आए और बिन पिये ही उससे छूट जावे ! घर आई यह पुनीत पावन गंगा मुख मोड़ रही है, अपना रुख बदल रही है। हृदय-मन्थन होने लगा। समाज दो भागों में विभक्त हो गया था। परिवार के सदस्य भी आपस में बंट चुके थे। माताएँ लाल से बिछुड़ गईं। वे अपने पीहर तक नहीं जा सकती थीं। बहन-भैया के राखी कैसे बांधे ? सारे गांव में इससे मायूसी छाई हुई थी। अनेक बार इस फूट को मिटाने का प्रयास किया गया। कई बार पंचायतें, सभाएँ हुईं पर सभी प्रयत्न विफलीभूत हुए। इस बार सबको आप पर ही उम्मीदें टिकी थीं। आपको इसी शर्त पर रविवार तक रोका गया था। समाज प्रमुख नथमलजी लुंकड़ ने कहा—आपने अभी तो रविवार तक रुकने की हामी भरी है, फिर यह विहार कैसा ? आपने फरमाया—शर्त याद कर लीजिए। लुंकड़जी बोले—मैं तो तैयार हूँ। फिर देरी किस बात की है श्री मुख ने फरमाया। सभी ने आपस में क्षमा याचना की। बंद व्यवहार पुनः चालू हुआ। हर्ष की शहनाइयाँ बज उठीं। जलगांव में यह झगड़ा स्थानकवासी जैन समाज का था। पर आपके लिए तो सम्प्रदाय का प्रश्न ही नहीं था, क्योंकि संत व्यक्ति विशेष का नहीं वह सम्पूर्ण समाज का होता है, राष्ट्र का होता है। आपने अपना जीवन राष्ट्र को समर्पित कर दिया था। आप में सम्प्रदायवादिता की भावना अंश मात्र भी नहीं थी। इसका ज्वलन्त उदाहरण हमें मिलता है अपनी जन्मभूमि अमरावती नगरी में जब आप पधारी।

यद्यपि आपका उस ओर गमन करने का विचार नहीं था किन्तु जब इन्दौर चातुर्मास में आपके भुआ, ताऊ आदि परिजन आए तब

रो-रो कर अर्ज गुजारी, विनती की तथा प्रार्थनाएं कीं। आपने फरमाया संतों के लिए सर्व भूमि स्पर्शना की होती है। जन्मभूमि का उनके लिए क्या महत्त्व? तब परिजनों ने इन्दौर संघ से कहा—आप हमारी मदद करें। वह दृश्य बड़ा ही गमगीन हो गया था जब परिजन विनती कर रहे थे और आप उसे अस्वीकृत कर रहे थे। दर्शकगणों के नयन अश्रुसिक्त हो गये। इन्दौर संघ ने भी परिजनों का साथ दिया और कहा—हम सभी आपके साथ हैं। हम महाराज श्री का विहार अमरावती की ओर करायेंगे।

संघ के निश्चय पर आपने पुनः विचार कर स्वीकृति प्रदान की। अमरावती का बच्चा-बच्चा नाच रहा था। बड़े बूढ़े सभी हर्षोल्लास से उछल रहे थे। इकतालीस वर्षों के बाद दाखी विश्व विमोहिनी रूप धारण कर आ रही है। प्रवचन धारा बह चली। जो दाखी मीठी वाणी से, लुभावनी बातों से मनोरञ्जन किया करती थी, वही अब महावीर का संदेश, सत्य धर्म का डंका बजाने गांव-गांव और नगर-नगर घूम रही हैं।

जैन-जैनेतर सभी आपकी वाणी का पान करते। अजैनों की भी अच्छी संख्या रहती। अमरावती से चार मील दूर डॉक्टर पटवर्धन एवं उनकी धर्मपत्नी द्वारा संस्थापित एवं संचालित 'जगदम्बा कुष्ट निवास तपोवन' आश्रम के नवनिर्मित ज्योति मंदिर के उद्घाटन पर आपको निमन्त्रित किया गया। आपने सहर्ष अनुमति प्रदान की एवं दम्पत्ति युगल की सेवा भावना की भूरि-भूरि प्रशंसा, अनुमोदना की। उसी समारोह में आमन्त्रित विनोबा भावे के साथ आपने चर्चा भी की।

जहाँ दो सरिताओं का मिलन होता है वह स्थान पुनीत पावन

तीर्थ गिना जाता है तो जहाँ दो संतों का स्नेह मिलन हो, वहाँ का तो कहना ही क्या ?

आषाढ़ कृष्णा एकम आई और दाखी के जन्म की खुशियाँ घर-घर में छा गईं। अर्ध शताब्दी महोत्सव, भव्य अभिनन्दन समारोह मनाया गया। खरतरगच्छ संघ का अधिवेशन हुआ। आपकी सुशिष्या पू० मनोहर श्रीजी म० सा० ने शतावधान किया। आपश्री को अभिनन्दन-पत्र प्रेषित किया और अखिल भारतीय स्वर्ण सेवा फंड की स्थापना आपके मार्मिक प्रवचन से, सत्प्रेरणा से हुई। आपने अपने भाषण में फरमाया—"हम देखते हैं बहुत से घरों में साग-सब्जियों के दर्शन बार त्यौहार होते हैं, घी तो नाम मात्र का वर्ता जाता है। ऐसी हालत में जहाँ पेट ही न भरा जा सके वहाँ बालकों को पढ़ाने-लिखाने की बात ही कहाँ ? बिना पैसे आज क्या हो सकता है ? समाज की भीतर-ही-भीतर हो रही इस जर्जर दशा, खोखलेपन को देख कर मेरा हृदय रोने लगता है। मेरे पात्र में आया अन्न, माल मलीदे देख मेरा कण्ठ रुक जाता है, ग्रास मेरे गले नहीं उतरता। अरे समाज के बच्चे, हमारे महावीर के प्यारे दाल रोटी को मोहताज, पढ़ाई खर्च उठाने में असमर्थ और इधर हमारे श्रीमंतों के घर रोज मिठाई, हलवा, गोली व चूर्ण खा-खाकर हजम किया जाता है, तथा जिन्हें वे खा नहीं सकते उसे नौकर, चाकर व कुत्तों-जानवरों को खिलाते हैं। बंधुओं यह हमारे लिए डूब मरने जैसी बात है।

इस प्रेरणादायी प्रवचन को सुनकर सभी के हृदय गद्‌गद् हो गये और उसी समय 'स्वर्ण सेवा फंड' खोला गया।

आपके प्रवचन ने प्रसुप्त मानवता को झकझोरा, सोते हुए को जगाया, भूलों को मार्ग बताया, भटकों को दिशा निर्देशन दिया। आप जहाँ भी गईं हजारों ने आपको प्रेम से सुना। आपने बिखरी शक्तियों को समेटा, टूटों को जोड़ा, बिछुड़ों को मिलाया, रूठों को

मनाया, गले लगाया, बिखरों को पिरोया, पतितों को पावन बनाया। संसार से घबराये हुओं को अपने चरणों में स्थान दे शान्ति प्रदान की। प्रेम, संगठन और परोपकार का बिगुल चारों ओर बजाया। स्थान-स्थान पर व्याप्त फूट, द्वेष कलह को मिटाकर ही आपने दम लिया। दिलों में पड़ी दरारों को भरा, हृदय में बनी द्वेष की, वैर की दीवारों को गिराया और समाज को क्या नहीं दिया ? तन, मन अर्पित कर दिया शासन के लिए। भगवान् महावीर का संदेश चिहुँदिशी प्रसारित करने के लिए आप हर परिस्थिति से जूझ पड़ीं।

□ □ □

११
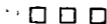
वैसाख कृष्णा दूज। भास्कर अपनी सम्पूर्ण किरणों के साथ धरा का चुम्बन करने लगा। सूर्यमुखी पुष्प अपनी विकसित मुस्कुराहट के साथ स्वागत करने लगे। विहंगगण अपने मधुर कलरव से जन-मन को रंजित करने लगे। मंदिर घंटानाद से गुंजित होने लगा और साध्वी वर्ग असज्झाय की क्रिया में तल्लीन था। दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन के स्वाध्याय के साथ क्रिया की पूर्णाहूति हुई। पूज्या श्री ने सभी को उसी स्थल पर बैठने का संकेत दिया। आप स्वयं पाट पर विराजमान हो गयीं। घड़ी ६ बजने का संकेत दे रही थी। पुस्तक हाथ में ग्रहण कर सूत्रार्थ बोलना प्रारम्भ किया। सूर्य के प्रचण्ड ताप से धरा शनैः शनैः उष्णता को प्राप्त हो रही थी। एक ओर गांठ की दाहकता और दूसरी ओर उष्ण वातावरण। पसीने की धाराएं छूटने लगीं। श्वास अवरुद्ध होने लगा। आवाज स्खलित होने लगी पर अन्तर की आवाज निकलती जा रही थी। दर्शनार्थी आते जा रहे थे।

पूरा हॉल खचाखच भर गया। तिल मात्र को भी स्थान न था और सभी एक मन से यही चाह रहे थे कि आपश्री अब विराम लें। अब पूर्ण विश्राम करें। समय यंत्र आगे बढ़ता जा रहा था और उसी के साथ लय में लय मिलाती आपश्री की अमृतवाणी सबको रसविभोर किये जा रही थी।

ग्रंथि ने उग्र रूप धारण कर लिया था। खरबूजा जितना आकार वस्त्र के ऊपर से भी दृष्टिगोचर होता था। प्रथम अध्ययन का सूत्रार्थ पूर्ण हुआ। सभी को मंगल पाठ के साथ प्रवचन सम्पूर्ण हुआ। कल प्रातः इसी समय पुनः प्रारम्भ होगा। सभी को अपूर्व सन्तुष्टि हो रही थी। बहुत समय पश्चात् आपश्री की वाणी श्रवण से कर्ण-युगल तृप्त हुये थे। मानस संतोषित हुआ था। अनन्त आह्लाद की, सुख की अनुभूति हुई थी। मन बार-बार चाह रहा था—चकोर के समान स्वाति नक्षत्र की बूंद रूप इस आवाज का पान करता रहे और दूसरी ओर अनन्त वेदना का ध्यान आते मन में टीस उठती। ओह! इस वेदना में भी अपूर्व शान्ति, अपूर्व साहस! हमें एक छोटी-सी फुंसी भी परेशान कर देती है। नाकों दम कर देती है। खाना, पीना, बोलना सब दुश्वार हो जाता है। सारे घर को सिर पर उठा लेते हैं हम। और इधर आपश्री हैं जो उपदेशामृत का पान करा रही हैं। अभी एक घंटा ही नहीं वरन् सारे ही दिन उपदेश धारा प्रवाहित होती रहती है। हर पिपासु अपनी तृष्णा को तृप्त करता है। जो भी आया उसे प्रेम से, स्नेह से आशीर्वचन कहे। चाहे अमीर हो या गरीब, सभी को समभाव से देखा। विशेषता यह थी कि धनवानों की अपेक्षा निर्धनों का विशेष ध्यान रहता। करुणा सिंधु के हृदय में सभी के प्रति दया भाव था। धनवानों पर दया इस बात के लिए रहती कि वे भोग लिप्सा में फंसे रहते हैं। उन्हें सद्मार्ग पर लाना और गरीबों पर अनुकम्पा इस बात के लिए कि दो जून रोटी का भी उनके पास अभाव

है। हम खाते हैं माल मलीदे और उड़ाते हैं मौज, शौक और ये बेचारे तरसते हैं सूखे टुकड़े को। बच्चे बिलखते हैं दूध को। इतनी भयंकर वेदना, असीम दर्द में भी दूसरों के दर्द का विशेष ध्यान रखा जाता था। प्रतिदिन ही प्रवचन-झरनों के मधुर जल से सभी संतृप्त हो रहे थे। पर परेशानी यह थी कि अन्य लोग वंचित रह जाते थे इस लाभ से, क्योंकि वे बाद में होने वाले प्रवचन में सम्मिलित होते थे। दो बार वे आ नहीं सकते थे, अतः सभी ने मिलकर निवेदन किया कि आपश्री ही सभी को यह लाभ दें तो उत्तमोत्तम। आपने स्वीकृति प्रदान की। सबकी खुशी में अपनी खुशी। सभी की सुविधा में अपनी सुविधा। दुविधा का तो कभी प्रश्न ही न रहा। अपने समय का तो तनिक भी खयाल न था क्योंकि यहाँ किसको चिन्ता थी खाने की या पीने की। पोरसी, साढ़पोरसी तो सहज में बन जाती थी।

जो सुनता कि महाराज श्री स्वयं प्रवचन फरमाती हैं, वह दौड़ा आता। इतनी वेदना में प्रवचन धारा। यकायक विश्वास न हो पाता और उसके कदम बढ़ जाते प्रत्यक्ष दर्शन करने को। कोई पैदल, कोई रिक्शा से और कोई गाड़ी से चला आ रहा था। मानो मेला लगा हो इस तीर्थ स्थल पर। और अधिक आवागमन को देखकर कभी लोग पूछ बैठते क्या यहाँ कुछ विशेष आयोजन हो रहा है—तो विदित होता कि महाराज श्री गांठ की भी परवाह न कर प्रवचन फरमाती हैं।

कोई कहता यह तो कोई सिद्ध पुरुष है, महान् आत्मा है जो इतनी शान्ति समाधि बनाये रखता है। एक समय की बात। एक अन्य स्थल से आया व्यक्ति पूछ बैठा कि आपकी यह साधना कब से चली आ रही है ? इतनी उग्र वेदना में इतनी समता। इनमें कोई अलौकिक शक्ति निहित है। आपने कोई चमत्कारिक घटना देखी है इन महात्मा की ?

श्रोता ने कहा क्यों नहीं, एक नहीं ऐसे तो अनेक प्रसंग हैं जो आपका अनूठा व्यक्तित्व प्रकट करते हैं। व्याधि समाधि के अलावा अन्य भी कई ऐसे प्रसंग हैं जिनमें जन-जीवन का उपकार भरा पड़ा है। मंदसौर का एक प्रसंग—व्याख्यान चल रहा था, यकायक घोर घटा छा गई। चिलचिलाती धूप को इन घटाओं ने ढक लिया। अंधकार चिहुँ ओर छा गया और देखते-देखते बूंदें बरसने लगीं। मूसलाधार वर्षा होने लगी। एक घंटा बीता, दो घंटे बीते। बारिश थमने का नाम नहीं ले रही थी। पानी सड़कों में भरने लगा। आवागमन अवरुद्ध हो गया। देखते-देखते चार घंटे बीत गये। वही तेज धार। पानी घरों में प्रवेश करने लगा। लोग सामान घरों में ऊपर ले जाते दिखाई देने लगे। सर्वत्र हाहाकार मच गया। जान माल पर संकट छा गया।

पर आपश्री का व्याख्यान जारी रहा, क्योंकि उपासरा दूर था व्याख्यान स्थल से। अतः व्याख्यान बंद करने का कोई प्रयोजन न था, किन्तु सांसारिक प्राणी भला कब तक इस आध्यात्मिक गंगा में स्नान कर सकते थे? सभी को चिन्ता थी अपने-अपने आवास की। घर का क्या हाल हो रहा होगा? आधे से अधिक लोग तो पलायन कर चुके थे। कुछ श्रद्धालु भक्तजन ही रुके हुए थे जो आपश्री की चिन्ता में थे। पानी दो मंजिलों तक आ गया। आपश्री तीसरी मंजिल पर पाट पर विराज रहे थे। जिधर दृष्टि डाले उधर सर्वत्र पानी-ही-पानी दृष्टिगोचर हो रहा था। लोग त्राहि-त्राहि कर रहे थे। कहीं वस्त्र कहीं अन्य पदार्थ, कहीं जानवर बहते जा रहे थे। पेड़-पौधे टूट-टूट कर गिर पड़े और पानी के तेज बहाव के साथ बह चले। सभी त्राहि-त्राहि करने लगे। कोई चिल्ला रहा था, कोई बहा जा रहा था पर बचावे कैसे? कोई उपाय दिखाई नहीं दे रहा था। ऐसा प्रायः मन्दसौर में हो जाता था कि मंजिलों तक पानी आ जाता था किन्तु कुछ समय बाद स्वतः कम हो जाता था पर आज तो इन्द्र महाराज

की कृपा के स्थान पर अकृपा हो गई। राजेन्द्र विलास भी जल-मग्न हो गया था। दिवस वीतने लगा। संध्या का प्रारम्भ होते देख कुछ श्रावक आपके समक्ष नतमस्तक हो कहने लगे—महाराज श्री बाढ़ बढ़ रही है। डूबने का खतरा है। शीघ्रता कीजिये क्योंकि राजेन्द्र विलास नीचा है। डूबने का डर है अन्यत्र चलिये।

महाराज श्री ने फरमाया—बंधुओ! रात्रि का समय होने आया। ऊपर पानी नीचे पानी, हम कैसे चलें? साधु मुनियों का यह आचार भी तो नहीं। आप लोग चिन्ता न करें। जो होनहार है, उसे कोई नहीं टाल सकता। आप धैर्य रखें।

संघ के व्यक्ति घबरा रहे थे कि अब क्या होगा? पर्युषण चल रहे हैं। भाद्रपदा अमावस्या की काली रात थी। दूसरे दिन वीर जन्मोत्सव कैसे मनाया जायगा? ये विचार सभी को आ रहे थे। सारा संघ किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था। सर्वाधिक चिन्ता थी गुरुवर्या श्री की। इधर पानी अविराम निरन्तर बरसता ही जा रहा था। घटा, घुप अंधकार और घनघोर वर्षा। कभी-कभी जोर-जोर से विद्युत् संपात होता, तो सभी का दिल दहलने लगता। और महाराज श्री थे ध्यान मग्न। हाथ माला के मनके फिरा रहे थे। नेत्र मुंदे हुए थे। कभी-कभी होठ फड़फड़ाते थे—कुछ मंत्राक्षर। न चिन्ता की रेखा थी, न घबराहट। परीषह व उपसर्ग दोनों ही साधु समभाव पूर्वक सहन करते हैं। आज वही परीक्षा की घड़ी थी। और रात्रि के एक बजे तो बाढ़ ने उग्र रूप धारण कर लिया। संघ के व्यक्ति अब धैर्य छोड़ चुके थे। अब क्या होगा? यह संकट किस प्रकार टलेगा? गुरुदेव तुम ही सहायक हो। दादा दत्त गुरु तुम ही रक्षक हो, दुखियों के सहारे हो।

तब गुरुवर्या श्री ने संघ वालों को धीरज बंधाते हुए ढाढस

देते हुए कहा—आप लोग अधीर न बनें। बाढ़ आनी थी जो आ गई। और वासक्षेप मंत्रित कर डाल दी पानी में। आप शान्ति रखें, सब ठीक हो जायगा और पानी अब आगे नहीं बढ़ पाएगा। जैसे ही आपश्री के मुखारविन्द से ये वाक्य प्रस्फुटित हुए कि पानी ने भी रुख बदलना प्रारम्भ किया। बरसते पानी ने विराम लिया। पानी सरकने लगा। लोग हर्ष विभोर हो नाचने लगे। यहाँ तो जान पर बाजी आई थी। मृत्यु सम्मुख खड़ी ताण्डव नृत्य कर रही थी और यह क्या चमत्कार हुआ? सभी श्रद्धाभिभूत हो चरणों में झुक गये। सर्वत्र खुशी का वातावरण हो गया।

प्रतिपदा का मंगल प्रभात। घर-घर चर्चा हो रही थी आपश्री द्वारा डाले गये वासक्षेप की। लोग सम्मिलित हो झुंड के झुंड आ रहे थे दर्शनार्थ। ओह! कैसी अलौकिक शक्ति को धारण करती हैं आप! कोई जगदम्बा कह रहा था तो कोई अवतार कह रहा था। इससे पूर्व भी आपके ओजस्वी अध्यात्म रस पूर्ण प्रवचन को सुनकर वैर-भाव, मन-मुटाव मिट चुके थे। सभी मजहब के लोग आपकी समता, स्नेह व संगठनमय वाणी को प्रेम से सुनते थे। जैन व अजैन सभी आते थे आपके दरबार में। चमत्कार को सब नमस्कार करते हैं। झुंड के झुंड चले आ रहे थे दर्शनार्थ और आपकी मुख मुद्रा निहार कर पावन हो रहे थे।

अच्छा, ऐसी घटना बनी थी। ओह! ये सिद्ध पुरुष हैं। जरूर ही ये अल्पभवी हैं, क्षिप्र मुक्ति गामी हैं। और धन्य हैं हम लोग जो इन महात्मा के दर्शन कर कृतार्थ हो रहे हैं। ये अनाथों के नाथ, दीनों के दयाल हैं, करुणा के सागर हैं।

आषाढ़ का महीना प्रारम्भ हुआ। कालिदास ने जैसा मेघदूत में वर्णन किया है 'आषाढ़स्य प्रथमे दिवसे'। काली-काली घटाएं

उमड़-उमड़ कर आने लगीं। चातुर्मासार्थं आपश्री ने शिष्यावर्ग को प्रयाण करने की आज्ञा दी। आप स्वयं भी विचारधारा वना रही थीं। प्रातः भानुदेव उदित हुए। आपश्री ने आदेश दिया—मैं विहार के लिए उतर रही हूँ। सुरन्जना श्रीजी तैयारी करके आओ, जब तक मैं पूज्य जयानन्दजी मुनि महाराज से वन्दनादि कर अनुमति लेती हूँ। यकायक विहार का आदेश विस्मयकारक था। न पूर्व सूचना, न तैयारी, न संघ को सूचित किया। वाहरे गुरु, आपकी लीला निराली है। सभी विहार की तैयारी में जुट गए और आपश्री पहुँच गये नीचे दूसरे उपाश्रय में विराजित व्याख्यान वाचस्पति पूज्य जयानन्द मुनि की सेवा में।

नमन्-वंदनादि के पश्चात् सुख पृच्छा की मुनि मंडल से और कहा—हुकुम अनुमति दीजिये, विहार करना चाह रही हूँ। विहार का नाम सुनना कम आश्चर्यकारी न था। इतनी गांठ का भार वहन करते हुए पद यात्रा ? यह कैसे सम्भव हो सकेगी ? महाराज श्री आप किन विचारों में डूब गये, अनुमति दीजिये विहार करने की।

नहीं ! नहीं !! यह कदापि सम्भव नहीं। आप विहार नहीं करेंगे। इस अवस्था में विहार किस प्रकार कर सकेंगी ? आप अपनी व्याधि और इस शारीरिक अवस्था का कुछ तो खयाल कीजिये !

यह शरीर तो व्याधि मंदिर है, इसका कार्य तो इसी प्रकार चलता रहेगा। मुझे क्या है ? मैं तो पूर्ण स्वस्थ हूँ। क्या आत्मा को रोग, शोक ने घेरा है ? रुग्णता तो इस देह के रोम-रोम में व्याप्त है। आप चिन्ता न करें। आप गुरुदेवों के आशीर्वाद से आपकी असीम कृपा से विघ्न वाधायें स्वतः ही दूर हो जावेंगी। आप अनुमति प्रदान करावें।

नहीं ! नहीं ! यह विचार अभी तो स्थगित कीजिये, फिर कभी देखा जायगा । पू० जयानन्द मुनि ने आपश्री का प्रयाण स्थगित कर दिया । अब आपके पास अनुमति का कोई भी मौका न था, क्योंकि गुरुजनों के प्रति विनम्रता, श्रद्धा, विनय तथा आज्ञा पालन आपके रोम-रोम में व्याप्त था । आषाढ़ महीना था, पश्चात् विहार का तो प्रश्न ही नहीं, क्योंकि समय अवशेष न था । भावना थी विलाड़ा गुरु दरबार में पहुँचने की, कामना थी वयोवृद्धा पूज्या महत्तरा चम्पा श्रीजी म० की सेवा में पहुँचने की पर भावी को मंजूर न था । आपने भी भावी भाव समझ कर विचार स्थगित कर दिया ।

समय ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय में व्यतीत होने लगा । आपश्री प्रातः नित्य क्रम से निवृत्त हो पू० महाराज श्री की सेवा में पहुँच जातीं । ज्ञान-गंगा प्रवाहित होने लगी । स्वाध्याय प्रारम्भ हुआ । अध्यात्मरस पूरिपूर्ण आगमवेत्ता श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज कृत चौवीसी, वीसी, स्नात्र पूजा, आगम सार, विचार रत्न सार अध्यात्म गीता आदि विषयों पर सारगर्भित हृदय स्पर्शी शब्दार्थ सहित स्वाध्याय होने लगा । पू० जयानन्दजी म० स्वयं श्रीमद् जी के अनन्य भक्त हैं व उनके स्तवन के रसिया हैं । भक्ति भाव रूप हिंडोले में सभी हिलोरें लेने लगे । स्तवन चल रहा था—

क्यूं जानु क्यूं बनी आवशे,

अभिनन्दन रस रीत हो मीत....।

चतुर्थ तीर्थङ्कर अभिनन्दन स्वामी की स्तवना हो रही थी । प्रभु आपसे प्रीति रूपी रस किस रीति से, किस प्रकार बन पड़ेगा । यह बनाव किस प्रकार बनेगा । प्रीति, प्रभु से प्रीति ।" प्रभु से की गई प्रीति, जग की प्रीति से, जड़ की प्रीति का निवारण कर देगी । सर्व

बंधनों से छुटकारा दिला देगी। वीतरागता का रस, सरागता में नहीं हो सकता। रागद्वेष को कम करना है तो प्रभु से राग लगाना होगा। जड़ से राग अनादि काल से चला आ रहा है। इन संस्कारों में शिथिलता प्रभु प्रीति से होगी। वीतरागता, वीतद्वेषता इस अवस्था को प्राप्त करना है पर कैसे हो यह ? पुद्गल से छुटकारा। ओह ! इसे ही प्राप्त करना है।

भक्ति भाव की उर्मियाँ उल्लसित होने लगीं। रोम राजि विकसित हो गई। नयनों से अश्रुपात होने लगा। भाव विह्वलता ने आश्रय लिया। सभी ज्ञान-गंगा में प्रक्षालन कर पुलकित हो रहे थे। कर्मों की रज उस अश्रुधारा में, ज्ञान धारा में मल-मल कर, घुल-घुल कर वह चली थी। भक्ति की मस्ती में दीवाने हो रहे थे। आभ्यन्तर आनन्द की अनुभूति होने लगी। वातावरण भी अध्यात्म रस से परिपूर्ण होने लगा।

और, इस आध्यात्म वीणा की झंकारें अन्यों के कर्णों में गुंजित हुईं। इस नाद से आकर्षित हो जिस प्रकार मृग खिचा चला आता है, उसी भांति आत्म रस के रसिक जन आकर्षित हो खिचे चले आने लगे। इससे भला कौन वंचित रहता ? नभ मंडल में घनघोर बादलों को देखकर कृषक खेती कार्य में जुट जाता है, मयूर अपनी कलाओं का प्रदर्शन करता हुआ नृत्य करने लगता है, उसी प्रकार ज्ञानामृत का पान कर अमर पद को प्राप्त करने के लिए रसास्वादन हेतु पिपासु गण आने लगे।

जब भास्कर अपनी आभा से, ज्योति से जग को प्रकाशमय बनाता, तब आपका ज्ञान रूपी आलोक अज्ञान रूपी अंधकार में घिरे प्राणियों का मार्ग प्रदर्शन करता। भूलों को मार्ग बताना, भटकों को ठिकाने लगाना आपने सिद्धान्त बना लिया था। इसी प्रकार प्रात:काल

एवं मध्याह्न दोनों समय आप प्रस्तुत रहतीं अध्यात्म चर्चा के लिए। वसन्त आया था भेद ज्ञान रूपी पुष्पों का। भ्रमर चैतन्य रूपी कुसुम का रसास्वादन कर रहे थे। और शनैः शनैः समयचक्र के साथ चातुर्मास काल व्यतीत हुआ।

पू० जयानन्द मुनि को आग्रह कर, निवेदन कर आपने भेजा अलवर की ओर। वहाँ भू-गर्भ से प्राप्त स्तूपाकार स्थल था। प्राचीन वस्तु की सुरक्षा एवं उपयोग को लक्ष्य में रख आपकी सुशिष्या शासन ज्योति मनोहर श्रीजी म० सा० ने वहाँ दादाबाड़ी निर्माण करने की योजना बनाई थी। विचार चला कि वहाँ पू० गुरुदेव के साथ श्रीमद् हीरविजयजी म० की प्रतिमा भी स्थापित की जाय। समाज छोटा था, किन्तु इस बात को लेकर मतभेद हो गया। दो मत हो गए। क्या किया जाय ? सभी पहुँच गए समन्वय साधिका के पास। एकता के सूत्र में बंधना-बांधना आपका सिद्धान्त था। और आपने फरमा दिया—क्या अड़चन है ? दोनों को एक ही स्थान पर एक साथ प्रतिष्ठित किया जाय। जो भी पंचमहाव्रत धारी हैं, संयम साधना, आत्म आराधना करते हैं, वे पूजनीय हैं।

गुरु भक्ति, गुरु के प्रति श्रद्धा आपके रोम-रोम में व्याप्त थी। हृदय समर्पित था गुरु पद कज में। १६ वर्ष की अल्पायु में गुरु वियोग हो चुका था। गुरु का साया सिर पर से उठ गया था। गुरु-वात्सल्य व स्नेह से आपको वंचित होना पड़ा था किन्तु गुरु की स्मृति अभी भी प्रत्यक्ष दिखाई पड़ती थी। इतना लम्बा समय व्यतीत होने पर भी गुरुवर्या का विरह आपको विचलित कर देता था। जब कभी गुरु विनय, गुरु सेवा, गुरु का कोई भी प्रसंग आता, आपके नयनों में श्रावण, भाद्रवा उमड़ पड़ता। आप फरमाते—यदि इस चाम के जूते सिल-सिल कर गुरु को अर्पित कर दिये जायं तब भी गुरु के उपकारों

से अनृण नहीं हो सकते। जड़-चेतन का अमृत पान कराया था उसी जगज्जननी ने। जन्मदात्री मां ने जन्म दिया उसका इस जीवन में उपकार नहीं भूलते, पर इस मां ने तो इस भव का नहीं, वरन् भवोंभव में गोते न खाने का अमर फल खिलाया है, तथारूप संस्कारों से सिंचन किया है। आह! भव-भव में ऐसी मां मिले जो कि संसार अटवी से, भवोदधि से पार उतरने का मार्ग प्रशस्त करती रहे। मेरी क्या हस्ती है, मेरी क्या ताकत है? यह घूंटी तो गुरुवर्या के द्वारा पिलाई गई है। यह सब उन्हीं का प्रतिफल है। यह कृपा उनकी ही है। मैं तो तुच्छ, नाचीज हूँ। पर जिस प्रकार ओस बिंदु मोती की उपमा को प्राप्त कर लेती है, उसी भांति गुरु कृपा का ही यह सुफल है जो आज इस अवस्था को मैंने प्राप्त किया है। यह वेदना यह रोग, मैं क्या इसको सहन कर सकती हूँ, पर गुरुजन ही शक्ति प्रदान कर रहे हैं इस पीड़ा को सह्य करने की।

इस प्रकार अलवर में तीनों गुरु प्रतिमा को स्थापित करने का आदेश दिया। मुनि श्री को निवेदन किया प्रतिष्ठा का और आपने प्रयाण किया दादाबाड़ी की ओर।

□ □ □

१२

सर्वत्र, सारे हिन्दुस्तान में आपकी समता की कहानी चर्चा का विषय बनी हुई थी। सभी कहते वेदना और समता में परस्पर प्रतिस्पर्धा हो रही है, होड़ लग रही है। वेदना कहती समता से, मैं तुझे गिराकर छोड़ूंगी और एक दिन मेरे कारण तुझे विस्तर गोल करना पड़ेगा। तू स्वतः ही पलायन कर जावेगी पर समता भी प्रतिद्वन्द्वी बनी थी। आजा मैं तो स्वागत के लिए तैयार हूँ। यही तो मेरी कसौटी है। अपनी ताकत आजमा ले पर मेरे समक्ष तुझे झुकना पड़ेगा। मैं कभी पतन के गर्त में नहीं जा सकती। हर हालत में मेरी ही विजय होगी। और वेदना और समता का, व्याधि में समाधि का द्वन्द्व प्रत्यक्षदर्शी को हैरान कर रहा था। डॉक्टर हैरान, संघ प्रमुख विस्मित थे। हर व्यक्ति चाहे निकट सम्पर्की हो अथवा नूतन दर्शी हो, इस द्वन्द्व को देखकर श्रद्धावनत हो जाता। इस महान् आत्मा को इतना कष्ट, इतनी वेदना। पर सोना अग्नि का संयोग पाकर, उसमें तप कर

ही निखालिश स्वर्ण बनता है। व्यक्ति कसौटी के निकष पर चढ़कर ही महापुरुष बनते हैं। यहाँ कसौटी थी वेदना और समता की। चातुर्मास करीब आ रहा था और आपने आदेश फरमाया शिष्या वर्ग को प्रस्थान करने का। आदेश का पालन, आज्ञा की पूर्ति करना आवश्यक था पर मन इन्कार कर रहा था। कदम आगे बढ़ने को अवरुद्ध हो रहे थे। यह दुःसाहस कैसे हो। संघ प्रमुखों को, गणमान्यों को फरमान विदित हुआ। दौड़े चले आए। महाराज श्री! यह कैसा आदेश! यह कैसी आज्ञा! आपकी यह अवस्था, इस स्थिति में छोड़ कर जाने को किसका जी चाहेगा। सभी उदास हो रहे थे। वातावरण मायूस हो गया। गमगीन हो गया। विनती प्रारम्भ हुई। आज्ञा फरमावें, यह चातुर्मास इसी स्थल पर सभी का हो।

आप लोग यह क्या कह रहे हैं। मैं तो पूर्णतया स्वस्थ हूँ। व्याधि तो इस शरीर को है। मैं क्या इस रोग से युक्त हूँ? यह आत्मा तो सर्व रोगों से, आधि, उपाधि, व्याधि से मुक्त है। रुग्णावस्था इस देह की है। इससे मुझे क्या? देखो, मैं अपना सब कार्य आनन्द से कर रही हूँ। आप सभी के सम्मुख व्याख्यान दे रही हूँ। आने-जाने वालों को पाथेय साथ में सम्भला देती हूँ फिर एक स्थान पर ४०-५० ठाणों की क्या आवश्यकता है? चार महीने की तो बात है। पश्चात् आ जावेंगे सभी। किन्तु सभी ने एकमत से, आपको इस अवस्था में छोड़कर, न जाने में आपको मजबूर कर दिया। सभी शिष्या-वर्ग ने कहा—गुरुवर्या श्री, हर साल हर चातुर्मास आपकी आज्ञानुसार करते हैं। आपकी हर इच्छा की पूर्ति करते हैं और हमेशा करेंगे ही। इस वर्ष आपकी निश्रा, आपके सान्निध्य में रहने की अनुमति प्रदान करावें। आखिरकार अनिच्छा से स्वीकृति दी।

हर पल, हर समय चिन्तन, मनन व उपदेश चलता रहता।
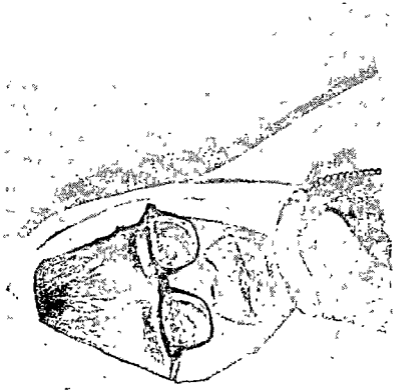
ध्यानलीन मुद्रा में

प्रवर्तिनी श्री विचक्षण श्री जी म० सा०

ग्रौर स्वाध्याय तो मानो जीवन प्राण था। जब कभी दर्शनार्थी कम हो जाते, ग्रापके हाथ में पुस्तक ग्रा जाती। स्वाध्याय से वेदना की ग्रोर ध्यान न जाकर परिणति में परिवर्तन हो जाता है। ग्रात्म परिणति हो जाती है, ग्रौर होती रहती ग्रालोचना। इस जन्म की ही नहीं, भव-भव में किये गए दुष्कृतों का मिच्छामि दुक्कड़म्।

ग्रलवर में प्रतिष्ठा करवा कर पू० जयानन्द मुनिवर जयपुर पधार चुके थे एवं प्रातः प्रस्थान कर रहे थे कच्छ की ग्रोर। समय से पूर्व ग्रापश्री प्रभु के दरबार में विराजमान हो गयीं। प्रभु भक्ति में तन्मय ग्राप के नेत्र अपलक निहार रहे थे प्रभु को उपशम रस से भरपूर प्रतिमा को। कुछ समय पश्चात् ग्राज्ञा दी 'साधु साध्वी ग्राराधना विधि' ले ग्राने को। इस समय जबकि प्रस्थान वेला निकट थी, ग्राराधना विधि की क्या ग्रावश्यकता हो गई? खैर कौतूहलता के लिए हुए विधि पर्तें ग्रा गई। जब मुनि श्री ने दर्शन, वंदन कर प्रभु द्वार से बाहर निकलना चाहा कि ग्रापश्री ने फरमाया— पूज्य श्री. हुकुम बक्शे तो ग्रधिक नहीं, दस मिनिट ग्रापश्री के लेना चाहती हूँ। फरमाइये, ग्रापको किस बाबत में ग्रावश्यकता है मेरी, मुनि श्री ने कहा।

भंते! ग्रालोयणा लेना चाहती हूँ। प्रभु का दरबार, गुरु भगवन्तों की निश्रा, ग्रात्मा की साक्षी ग्रौर चतुर्विध संघ की उपस्थिति, यह सुनहरा ग्रवसर न जाने फिर ग्रावे या न ग्रावे। ग्रापने मुनि श्री से ग्रर्ज किया।

ग्राप तो हर समय ग्रालोयणा करती ही रहती हैं, फिर यह तो ग्रौपचारिकता है।

भगवन्, ग्राप यह न फरमावें। ग्रपने दोषों को गुरु के समक्ष

कहना ही चाहिये। उनकी आलोचना लेने का विधान शास्त्र सम्मत है। वास्तव में आलोयणा मन की है, किन्तु गुरु मुख से ली गई आलोयणा निष्कपट, निष्कंटक होती है। पूज्य श्री यह औपचारिकता नहीं वरन् कर्मों को भस्मीभूत करने का साधन है। अन्यथा शास्त्रों में वर्णित ही है कि आलोयणा ग्रहण करते समय अपने पातक में किञ्चित मात्र छिपाव का परिणाम दुःखदायी है।

स्वीकृति मिलने पर विधि प्रारम्भ हुई, पंचमहाव्रतों की आलोयणा। मुख से स्वर प्रस्फुटित हो रहे थे। सर्वतः प्राणातिपात विरमण व्रत—इस जीवन में जानकर, अनजान में, किसी भी कारण से, हिंसा की हो, कराई हो या करते हुए का अनुमोदन किया हो, इस भव में, अन्य भव में या भवोभव में हिंसादि कार्य हुए हों तो उसका प्रायश्चित् करती हूँ और मेरा मिथ्यात्व दुष्कृत हो।

मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह एवं रात्रि भोजन इन छहों व्रतों की आलोयणा के स्वर वातावरण को आकम्पित कर रहे थे। दर्शनार्थियों की नजर टिकी थी आपश्री की मुख मुद्रा पर और आपके निर्मिमेष नेत्र प्रभु मूर्ति को निहार रहे थे। आंखों में आंसू उमड़ रहे थे। पातक जल के रूप में निकल कर वह चला था। पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय एवं त्रसकाय की आलोयणा। एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरेन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय प्राणियों से क्षमायाचना। ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र की विराधना हेतु आलोयणा, अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका देव-देवी, इहलोक, परलोक और समाज, कृत आशातना की आलोचना की जा रही थी।

इस आत्मा के द्वारा जो कोई भी पातक कार्य हुआ हो, प्रभु उन सभी की आलोचना लेती हूँ। क्षमा करो प्रभु ! यह चेतन जब

तक अपनी चेतनावस्था को विस्मृत रखेगा तब तक जन्म-मरण के चक्र में, जड़ के संयोग से पाप कर्म, दुष्कर्म करता ही रहेगा। विगत सभी अपराधों को क्षम्य कर आगामी भविष्य में सद्‌बुद्धि मिले। कर बद्ध प्रार्थना हो रही थी प्रभु से एवं गुरु भगवन्त से। वासक्षेप ग्रहण कर आज का दिवस महान् पुण्योदय का दिवस स्वीकार किया। कृत कृत्य हुआ यह जीवन।

मुनिश्री तीन चार दिन पूर्व पधारे थे और सुबह, मध्याह्न हर समय अध्यात्म चर्चा में समय व्यतीत हो रहा था। परमात्म छत्तीसी, क्षमा छत्तीसी आदि विषयों पर मनन हो रहा था।

यदाकदा यदि किसी की दृष्टि गांठ की ओर चली जाती तो वह सिहर उठता। ओह, कितना भार इस ग्रंथि का व वेदना का आप वहन कर रही है। जो सुनता दौड़ा चला आ रहा था। आप सभी से यही कहते—बंधु जो बांधा है उसे तो स्वयं को भोगना ही पड़ेगा। जो बीज बोयेगा तो फल तो अवश्य ही मिलेगा। कोई किसी का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्ता नहीं—'अत्ता, कत्ता, विकत्ता य'। यह आत्मा ही कर्त्ता, धर्ता है तो फिर डरना क्या? हम तो पुण्यशाली हैं जो आज हमें वीतराग प्रभु का शासन, वीतराग प्रभु की शरण, वीतराग वाणी मिली है। उस वाणी को हमने समझा है, श्रवण किया है, शेष है जीवन में उसे धारण करना। अभी तो प्राइमरी श्रेणी है, जो प्राइमरी पास करता है, वही एक दिन मिडिल, सैकेण्डरी आदि से गुजरता हुआ कॉलिज जाकर बी. ए., एम. ए. पढ़ता हुआ उत्तरोत्तर विकास कर सकता है। दो बातें याद रखनी हैं—'बंधे सावधान, उदये समभाव'। हमें कर्म करते हुए कर्म-बन्धन हेतु सावधान रहना है और जो अशाता का उदय है, उसमें समता रखनी है। उदयगत को कोई रोक नहीं सकता। ज्ञानी और अज्ञानी में अन्तर यही तो है। जो ज्ञानी है वह

समता रखता है और अज्ञानी रोता, पीटता व चिल्लाता है। हम पुण्यशाली महाभाग हैं जो वीतराग वाणी हमें यह समभाव सिखला रही है अन्यथा कहीं घोड़े, गधे, कीड़े मकोड़े बने हुए थे जो उद्धार लिया और मनुष्य जन्म मिला और आर्य देश, आर्य कुल एवं आर्य संस्कार प्राप्त हुए हैं। संस्कारों का बीजारोपण ही संस्कृति को उज्ज्वल बनाता है। अतः हमें ध्यान रखना है कि—

समाज में, परिवार में, राष्ट्र में नई प्रवृत्ति को जन्म देने से पहले उसके परिणाम के विषय में चिन्तन करो। क्योंकि वह प्रवृत्ति कहीं रुढ़ि का रुप न ले ले और भविष्य में वह दु:खदायी न बन जाये।

ज्ञानपंचमी का दिन था। आप वीर बालिका विद्यालय में, जो कि गुरुवर्या सोहन श्रीजी म० सा० की प्रेरणा से संस्थापित है, वर्ष गांठ पर पधारे। श्वेताम्बर जैन स्कूल से भी निमन्त्रण आया था। आप वहाँ से सीधे पहुँच गये। कार्यक्रम छत पर रखा गया था और आप थे असमर्थ ऊपर चढ़ने में। समस्या खड़ी हो गई। क्या किया जाय ? शिक्षकगण ने प्रार्थना की आप आज्ञा दें १० मिनिट में सब व्यवस्था नीचे हो जायेगी किन्तु नई प्रवृत्ति को जन्म देना कहाँ तक उचित है ? व्यवस्थित कार्यक्रम में अव्यवस्था होते देख आप धीरे-धीरे ऊपर चढ़ने लगे। मैंने कहा महाराज श्री आपको चढ़ने में कितना कष्ट पड़ रहा है, चार-पाँच मंजिल ऊपर चढ़ना है, शिक्षकगण भी सब व्यवस्था नीचे करने को तैयार हैं तब आपश्री ने इन्कार क्यों किया, निषेध क्यों किया ?

देखो, आज मेरी असमर्थता से मैं सब कार्यक्रम नीचे करवा सकती हूँ। आज की पीढ़ी तो मुझ से दस कदम आगे बढ़ने वाली है। और वहाँ पर ऐसा तो महाराज श्री ने भी किया था, अतः कोई

हर्ज नहीं। इस प्रकार अवलम्बन लेकर कार्यक्रम में अदल-बदल रद्द तक कर सकेंगे। मैं नई प्रवृत्ति को जन्म न दूँ, इसी कारण धीरे-धीरे ऊपर चढ़ रही हूँ, अन्यथा मैं उदाहरण रूप हो जाऊँगी।

कथनी और करनी में भेद न था। जो कुछ आप उपदेश देते मानो स्वयं उसे अनुभूत करके प्रगट कर रही हों। अनुभूति गम्य विचार अन्तःस्थल का स्पर्श किये बिना नहीं रहते। उसी अनुभूति को श्रवण करने हेतु जनता उमड़ चली आ रही थी। दादावाड़ी का विशाल प्रांगण संकीर्ण हो जाता था जन मेदिनी से।

यकायक समाचार मिला पूज्य अनुयोगाचार्य कान्तिसागरजी म० साहब आपश्री की शाता पूछने आ रहे हैं। आपने सोचा—मेरे कारण परेशान होंगे, पर कुछ चारा न था। गुरुजनों के प्रति अगाध श्रद्धा का स्रोत प्रवाहित होता था। कहाँ बाड़मेर पश्चिमी राजस्थान और कहाँ जयपुर। व उग्र विहार कर आप पधारे। अध्यात्म गंगा का पूर आ गया और वह उमड़ने लगी। गुरुजनों को मेरे कारण कष्ट उठाना पड़ा. अतः क्षमायाचना थी।

पश्चात् पर्युषण सानन्द सम्पन्न हुए। गाँव-गाँव और नगर-नगर से श्रद्धालु भक्त गण दर्शनार्थ व शाता पूछने बसें ले लेकर आ रहे थे। देहली संघ १० बजे आने वाला था। व्याख्यान के पश्चात् आपने ऊपर नहीं पधार कर राह पकड़ली प्रभु द्वार की। कदम बढ़ चले और माला हाथ में ले ली। एक घंटा व्यतीत हुआ, दो हुए और अभी तक मुँह तक नहीं धोया गया था। कुल्ले भी नहीं किये थे। होठ सूख रहे थे। उन पर सफेद-सफेद पपड़ी छा गई थी। शिष्याएँ परेशान थीं। गर्मी का समय और तिस पर ग्रंथि की दाहकता। इधर आप कुछ भी ग्रहण नहीं कर रहीं। पूछा तो ज्ञात हुआ कि आपश्री ११ बजे पहले कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे। महाराज श्री कंठ सूख रहे हैं, तृषा बाधित कर

रही है, गांठ की तीक्ष्ण वेदना व उष्णता है, फिर भी आप जल तक ग्रहण नहीं कर रहे ? देहली संघ आयेगा और १२-१ बजे जावेंगे, आप प्रतिज्ञा न लें। रोजाना ही ६-१० बजे पहले आप कुछ भी ग्रहण नहीं करते। आप इस शरीर का कुछ तो ख़याल कीजिये।

आपको शरीर की कहाँ परवाह थी ? अरे क्यों चिन्ता करते हो ! यह शरीर तो मांगे ही जाएगा। इसको कभी तृप्ति हुई है ? शाम को जीभर खाया, पीया और सुबह हुई कि भूखा-का-भूखा। तप के बिना कर्मों की निर्जरा हो नहीं सकती। तीर्थङ्कर चक्रवर्ती सभी को तप का अवलम्बन लेना ही पड़ा है। मेरा दुर्भाग्य है कि तप का उदय नहीं है। मैंने किसी को तपान्तराय दी है पूर्व भव में जो उदय आई है। मैं तो तपस्या में कमजोर हूँ, अशक्त हूँ। तप की भावना ही नहीं आती। कर्म की राशि ढेर पड़ी है। वह किस प्रकार भस्मीभूत होगी ? अश्रुपूरित नयन अन्तराय के कारण छलक पड़ते। ओह ! मैं तप नहीं कर सकती। कभी जिन्दगी में कोई बड़ा तप नहीं किया।

महाराज श्री यह आप क्या फरमा रहे हैं। अभी तक तो आपने कुछ लियातक नहीं। रोजाना ही १० बजे से पहले कुछ ग्रहण करते नहीं, फिर भी आप कहते हैं तप का उदय नहीं। अभ्यन्तर तप तो प्रति पल आपका चलता ही रहता है। हर समय उपदेश चलता ही रहता है।

सब कुछ ठीक है उपदेश-उपदेश है, तप-तप है। आत्मा का स्वभाव, आत्मा का गुण तपमय है। अनाहारी उसकी अवस्था है। आत्मावस्था को प्राप्त करना है तो तप करना ही होगा, भोगों का त्याग करना ही होगा, जड़ के संग का रंग उतारना ही होगा।

□ □ □

१३

- घड़ी टिक्-टिक् कर रही थी। समय अपनी अबाध गति से चला जा रहा था। दिसम्बर का महीना चल रहा था। सर्दी ने अपना जोर पकड़ा। ओस की बूंदें वनस्पति पर पड़ीं मोती की उपमा को प्राप्त कर रही थीं। पक्षी अपने नीड़ में घुसे रहते। जानवर अपने-अपने निवास स्थान पर दुबके पड़े रहते। पानी के स्पर्श से शरीर ठिठुर जाता और इसी समय कल्पना कीजिये यदि कोई तन पर से वस्त्र उतारने को कहे तो? और आपके तन पर वस्त्र तक नहीं। गांठ के कारण वस्त्र का स्पर्श भी आपको सहन नहीं होता। सिर और पैर पर कुछ वस्त्र धारण कर सकते थे पर धड़ तो खुला ही रहता। और देखते-देखते आ गयी ११ तारीख। रात्रि के दस बज चुके थे। प्रभु की भक्ति स्तवना ने अभी विराम लिया ही था कि गांठ में उठे हुए एक छाले में से खून बहने लगा। और प्रवाह बढ़ता ही गया, बढ़ता ही गया। रुई लगाई गई पर न रुका वह, टपकने लगा। प्याला नीचे

लगाया गया। वह भी रक्त से लबालब भर गया। वस्त्र रक्त से रंग गये। खून ही खून दिखाई देने लगा। सभी परेशान थे। अधीर हो गये। जो भी देखता, चक्कर आ जाते। शिष्याएँ गश खाकर गिरने लगीं पर आप उसी शान्त मुद्रा में विराज रही थीं। सभी को सान्त्वना दे रही थीं—चिन्ता न करो, घबराओ नहीं। शान्ति से कार्य करते जाओ। जो निद्राधीन हो चुके हैं, उनको विक्षेप न पड़े। रात्रि का समय है, शोर न करो। अरे, यह तो खराब खून है, दूषित रक्त है। अच्छा है—जितना निकलता है निकलने दो।

सभी को यह महसूस हो रहा था मानो रक्त दूसरे का निकल रहा हो और आप स्वयं ढांढस बंधा रही हों। जबकि कार्य विपरीत बना था। निर्देश दिया जा रहा था—यह कार्य इस प्रकार करो। रुई लो, पोछों, मानो निर्देशक हों। आश्चर्य था, इतना रक्त बहने पर भी घबराहट का नामो निशान नहीं, तो फिर चिन्ता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। वास्तव में जिसने अपना ख्याल करना छोड़ दिया, उसका जगत ख्याल रखता है।

करीबन ३-४ किलो खून शरीर से बह चुका था। रुग्ण शरीर में कमजोरी ने प्रवेश किया। कमजोरी पर कमजोरी बढ़ती जा रही थी। ताज्जुब इस बात का था कि आज्ञा देदी कि इसका जिक्र डॉक्टर से नहीं किया जाय क्योंकि यह तो दूषित रक्त था जो निकल गया। और दूसरे दिन भी उसी समय जब प्रभु भक्ति को अवकाश दिया कि रक्त ने पुनः जोर दिया और वह चला। क्या करें और क्या न करें। लाल-लाल सुर्ख रंग, क्या यह दूषित हो सकता है ? नहीं ! नहीं !! मन तो गवाही नहीं देता पर महाराज श्री को यह रक्त उद्विग्न नहीं करता, विचलित नहीं करता। क्योंकि वे देहातीत रूप में अवस्थित हो चुके हैं। शरीर से आत्मा जुदी है यह विचार तो

उनके रग-रग में व्याप्त हो गया है। खून जा रहा शरीर से, देह से और आत्म तत्त्व है विदेही। खून के जाने न जाने से इसका क्या बिगड़ता बनता है ?

और चिन्तन चल पड़ा—रे चेतन, सावधान रह और समभाव रख। उदयगत को तो भोगना ही पड़ेगा, चाहे रोकर भोगो या शान्त भाव से भोगो। रोकर भोगने में कर्म बन्धन पर और बंधन बढ़ता जाएगा और सहन करने में कर्मों की निर्जरा ही होगी। कराहने से वेदना कम न होगी और न ही समता रखने में कम होगी। हां, यदि यह मन चिन्तन में लग जाय या ध्यान उस ओर से हट जाय तो उस तरफ लक्ष्य न होने से वेदना की अनुभूति कम अवश्य होगी।

तीसरे दिन सायं पांच बजे पुनः धारा प्रवाह रक्त बहने लगा। विगत दो दिन में सात आठ किलो खून देह का साथ छोड़ चुका था और अभी कितना निकलना शेष रह गया ! हृदय सभी के धड़क रहे थे। हे प्रभु ! यह क्या अनर्थ हो रहा है। दिन प्रतिदिन का यह सिलसिला हो चला। और आपश्री तो डॉक्टर को बताने से भी इन्कार कर रहे हैं। अन्ततः दुलीचन्दजी टांक की धर्मपत्नी श्रीमती शान्ता बाई ने डॉक्टर को इसकी सूचना दी। इधर लालचन्दजी वैराठी कार लेकर डॉक्टर मेहता को बुलाने चल दिये। डॉक्टर सा० स्वयं हैरान हो रहे थे रक्त को बहते देखकर। क्यों न हों, सभी के मुख पर मायूसी छाई हुई थी। सर्वत्र उदासी नजर आ रही थी।

खून की जांच करनी पड़ेगी। अनुमान तो लगता है कि शुद्ध रक्त का प्रवाह है। आपने हमें सूचित क्यों नहीं किया ? किसे कहें ? क्या जवाब दें। जिह्वा तलवे से जा लगी। करीबन १०-११ किलो रुधिर देह से निकल चुका था। शरीर अत्यधिक दुर्बल हो गया था और रक्तिम आभा का स्थान ले लिया श्वेतता ने। जांच के बाद सिद्ध

हो गया कि खून शुद्ध था। बिजली के करेन्ट की भांति हवा के साथ यह समाचार फैल गया कि गांठ फूट गई है और मेला लग गया। दर्शनार्थियों का तांता लग गया था। समूह आते जा रहे थे। और प्रतिबन्ध तो था ही नहीं दर्शनों का। पीड़ा थी, व्याधि थी, पर किसी को दर्शन से वंचित न किया जाय, यह आपका फरमान था। ये गृहस्थ जन घर गृहस्थी के सत्तर धंधे छोड़ कर, कष्ट उठा कर, द्रव्य खर्च कर दौड़-दौड़ कर चले आये हैं। अरे, इनको मंगल पाठ सुनाओ। इनको खाली न जाने दो।

एक दिन एक साध्वी ने पूछ ही लिया—महाराज श्री! अत्यधिक वेदना है और तिस पर दर्शनार्थियों का यह आवागमन! शरीर अशक्त हो गया है। आराम करने की भी फुर्सत नहीं मिलती, फिर भी आपके चेहरे पर बेचैनी की, तनाव की रेख भी नहीं उभरती। आप दर्शनार्थियों के तांते से परेशान नहीं होते। पर आप तो कहने लगे—मुझे गृहस्थों से कोई परेशानी नहीं। ये तो अपना समय देकर, कष्ट उठाकर न जाने कितनी-कितनी दूर से चले आ रहे हैं, परेशानी है तुम शिष्या वर्ग से, जो एक ही स्थान पर इतने लम्बे अर्से से विद्यमान हो। वीर की सेविका हो, गाँव-गाँव में घूम-घूम कर प्रचार करना चाहिये।

तो महाराज श्री सेवा के लिए भी तो आवश्यकता है! सेवा? उसके लिए तो पाँच-सात साध्वीजी बहुत हो जाती हैं। ४० का यहाँ क्या काम? हलचल किसकी? यह तो बाह्य है हमें तो अन्तर की हलचल समाप्त करनी है। जो आए उसे मीठे बोल दो, वह दो शब्द सुनकर तृप्त होकर जावे। उसे पूर्ण शान्ति का अनुभव हो। यह तो स्थान ही शान्ति का है।

हेमप्रज्ञा श्रीजी व सुयशा श्रीजी दोनों नवदीक्षिता महाराज श्री

की वेदना को अनुभव् कर, गुरु चरणों में इस हालत में समर्पित हो हर्षित हो रही थीं अन्यथा सेवा का लाभ फिर कब मिल सकता था ? एक दिसम्बर की दीक्षा थी और उससे एक दिन पूर्व, नवनिर्मित 'विचक्षण भवन' उपाश्रय का उद्‌घाटन होने वाला था। योजना थी आपश्री का मंगल प्रवेश हो। पर कमर के दर्द ने यकायक आ दबोचा, जिसके फलस्वरूप उठना—बैठना बंद होने लगा और त्रिदिवसीय रक्त स्राव से अत्यधिक शारीरिक शिथिलता आ गई। रक्त स्राव का इलाज हो जाने से बहाव बंद हो जाता पर दिन में ४-५ बार तो आ ही जाता। हालत यह थी कि कमर के दर्द के कारण दो घड़ी आप लेट भी नहीं सकती थीं। बस, जब देखो तब बैठी, स्थिरासन में विराजित। दिन हो अथवा रात, निरन्तर यही अवस्था चल रही थी। शीत का प्रबल प्रहार हो रहा था। वस्त्रों ने शरीर का साथ छोड़ दिया। उस शीतलता से परिपूर्ण रात्रि में रक्त-स्राव होने पर ठंडे पानी का उपयोग कंपकंपी पैदा कर देता। ज्वर का तापमान भी तीव्रतर वृद्धि को प्राप्त हो रहा था, रक्त-स्राव को रोकना अत्यावश्यक था।

जो भी आपकी इस दयनीय दशा की ओर देखता और उसके नेत्र जब अश्रुपूरित हो जाते तो आपका चिन्तन अग्रगामी होता। आप समझातीं—देखो, कर्म किया है जिस प्राणी ने, फल उसी ने पाया है। प्रत्यक्ष ज्वलन्त उदाहरण है। सावधान हो जाओ। कर्म बन्धन से बचो। राग को आग लगाओ। राग का विस्तार संसार में सर्वाधिक है। जब राग की आग का शमन हो जायेगा तो द्वेष तो स्वतः बाहर हो जाएगा। प्रकाश के आने पर अन्धकार को धक्के नहीं मारने पड़ते, वह तो स्वतः ही पलायन कर जाता है। इन कर्मों से जूझना है।

मुझे तो अधिक है ही क्या ? उस वीर प्रभु की ओर दृष्टिपात करो। वे तीर्थङ्कर थे। जगत उद्धारक, करुणा सिधु। उन पर भी

कर्मों ने आक्रमण किया तो मैं तो किस खेत की मूली हूँ। मेरी तो क्या हस्ती है ?

श्वेत वस्त्रों के पर्दों में विराजित आपश्री हर आगन्तुक को मुस्कुराहट के साथ आशातीत प्रसन्नता प्रदान करतीं। नवागन्तुक आपसे ही कई बार प्रश्न कर वैठता—महाराज श्री ! किन महाराज को व्याधि ने ग्रसित कर रखा है ? और आपश्री को ही इस रूप में पाकर धन्य समझता। ओह ! आपकी आत्म-शक्ति कितनी विकसित है और कर्मों से किस प्रकार आप युद्ध कर रही हैं। इस प्रकार तीन महीने से ऊपर बैठे-बैठे हो गए। वाहरे कर्म ! क्या तुझे किसी की शर्म है ? सारे हिन्दुस्तान में जैन समाज पर हुकूमत चलाने वाले को किस प्रकार कायल बना दिया। और महाराज श्री बोल उठते—चाहे राजा साहब हो या महाराज साहब चाहे चक्रवर्ती हो या तीर्थङ्कर यहाँ किसी के तिलक नहीं निकला। कर्मों ने स्वयमेव तो प्रवेश नहीं किया। आपने स्वयं ही तो उनको निमन्त्रण दिया है तो वे क्यों न आवेंगे। अब मेहमान का आप रो-रोकर स्वागत करें या हँस-हँस कर, यह आप पर निर्भर है। रोकर स्वागत करने वाले का तो वे पीछा ही नहीं छोड़ते।

और आपकी इस अद्‌भुत क्षमता का, गहन शान्ति का परिचय सभी को प्राप्त हो रहा था; पर आप फ़रमाते—अरे यह तो आंशिक समता भी नहीं। सिंधु में बिंदु भी नहीं। समता थी महावीर की, गज सुकुमाल की, खंधक मुनि की, मेतारज मुनि की। धकधकती आग में जलती देह की उष्मा उनके मन को छूना तो क्या, करीब भी नहीं पहुँच सकती। राग को जला दिया था तो ताप भला मन को किस प्रकार वेदन करता ? धन्य है उन मुनियों को, उन साधकों को। अभी तो कदम बढ़ा है और मंजिल बहुत दूर है। प्रभु, आपको शतशः

नमन है जो इस दूरी को समाप्त कर दी। हर आगन्तुक ने जो शब्दोच्चार किया, वह प्रभु आपको ही समर्पित है।

दीक्षा के समय नाम मात्र को अन्न का उपयोग होता था और अब तो उससे भी मुख मोड़ लिया था। कुछ दूध, मुनक्का आदि पदार्थों का सेवन मात्र अवशेष था। रुचि का अभाव। तिस पर चिन्तन। अरे चेतन, यह 'जड़ चल जग की ऐंठ' है पुद्गल का भोग जगत की जूठन का उपयोग है। आत्मन्! यह चेतन तो इन सबसे परे शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य स्वरूप है। आहार अनन्त काल से किया किन्तु यह शरीर उसको ग्रहण करता-करता अभी तक नहीं थका।

यदि कभी संयोग से रस की प्राप्ति हो जाती तो प्रश्न उठ खड़ा होता कहाँ से, कैसे, किसके लिए, क्यों?

डॉक्टर मेहता और डॉक्टर नवलखा लगभग रोजाना दिन में एक-दो बार आ ही जाते थे। एक दिन जांच कर रहे थे कि स्वर उच्चारण किया 'अब तो हम जीत गए'। प्रश्न अतीत की ओर ले गया डॉक्टर साहब को जबकि मालपुरा में इस स्थिति का वर्णन कर आपको दृढ़ संकल्प से विचलित करना चाहा था। जीत थी, राग पर, जीत थी व्याधि पर, वेदना पर समता की। जीत थी पर परिणति पर आत्म परिणति की, पर भाव पर, विभाव पर, स्वभाव की।

अवसर देख मेहता सा० ने पूछा महाराज श्री! आपको कोई कष्ट? कष्ट मुझे? हाँ है! एक तो यह कि आने वाले को दो शब्द नहीं दे सकती। वह खाली चला जाता है। आता है पर कुछ मिलता नहीं। समुद्र के पास आकर भी प्यासा लौट जाता है। दूसरा इन पैरों ने पराधीन परवश कर दिया। मेहता सा० सोचने लगे हालत निरन्तर गिरती जा रही है। बोलना अस्पष्ट हो गया है, पर इन्हें

किसी को कुछ न देने का कष्ट है। संघ की सेवा की भावना, प्राणी मात्र पर अनन्त करुणा ! ओह ! वर्तमान महावीर तुम्हें शतशः प्रणाम !

हर पल जागृत रहना था। निद्रा तो कोसों दूर जा चुकी थी। पूछ ही लिया गया एक दिन। महाराज श्री, निद्रा की दवा ले लीजिए, आराम मिलेगा।

बंधु ! निद्रा लेनी है पर कैसी ? जड़ से, पुद्गल से निद्रा लेनी है। 'हवे तो घर खाली करवानी वेला आवी' वेदना को शमन करने के लिए दवा की अपेक्षा नहीं। समभाव पूर्वक इस अनुभूति का शमन करूँ, यही कामना है।

हर क्षण चिन्तन, हर बात पर चिन्तन। आवाज स्खलित होने लगी थी। दिन भर अधोमुख रहती। दूध पीने को आग्रह किया तो कहा—अरे ! आत्म रस का दूध पिला दो। और उस आत्म रस का पान प्रतिपल करना था। बाह्य जगत् के शब्दों को यह शरीर सहन करने में असमर्थ होता जा रहा था। फिर भी अन्तर में अरिहन्त-अरिहन्त का प्रति पल स्मरण होता रहता था।

मार्च का महीना व्यतीत हो चुका था और आ गया अप्रैल। वैसाख की कड़कड़ाती धूप से आंखें चुंधियाने लगीं। शारीरिक ताप, गांठ का ताप था ही वातावरण भी उष्णता से भर गया।

दिन व्यतीत हो रहे थे। नर्स आती और रक्त चाप की जांच करती रहती। और एक दिन रक्त चाप आया शून्य ! अरे यह क्या ? मेहता सा० चकरा गये। नर्स के नेत्र झरने लगे। अब समय नजदीक है। जिस किसी को सूचना देनी है, दे दीजिए। फोन, तार से गांव-

गाँव में सूचना दी जाने लगी। २-४ घंटे व्यतीत हुए कि रक्त चाप सामान्य हो गया।

डॉक्टरी फेल हो रही थी। यह कैसी शक्ति है ? ऐसा तो कभी देखा नहीं, सुना नहीं। हे महात्मा, धन्य है आपकी महिमा को, आपके इस विराट् रूप को। अक्षय तृतीया। इक्षु रस का पारणा हुआ।

और चौथ का दिन आया। सप्त स्मरण, नित्य क्रम प्रतिक्रमण से निवृत्त हुये।

आदेश हुआ भक्ति रंग में रंगने का। मद्रास निवासी श्रीमती चन्दन बहन ने टेप लगा दी। देहली निवासी गुलाब सुन्दरी बाफना समीप बैठ गईं। भँवर बाई रामपुरिया ने भी साथ दिया। भक्ति लहरें तरंगित हो रही थीं। 'व्हाला म्हारा हैया मां रहेजे, भूलूं त्यां तू टोकती रहेजे'। और फिर श्रीमद् राजचन्द्र की आत्मसिद्धि प्रारम्भ हुई। साढ़े दस बजना चाह रहे थे। 'अहो, अहो, बोलो' आदेश हुआ। मनोहर श्रीजी म०, मणि प्रभा श्रीजी म० आदि ने प्रार्थना बोलनी प्रारम्भ की। अन्तर सद्गुरु के चरणों में लोटने लगा। भावनाएँ विकसित होती जा रही थीं। पश्चात् कहा—दीक्षा ! असमय दीक्षा की बात, किसकी दीक्षा, कब ? उत्तर दिया मधु व किरण की।

स्वीकृति के रूप में मस्तक हिल गया। फिर नमस्कार महामंत्र की धुन प्रारम्भ हुई। 'आज मैं' आदि वाक्य बोले पर स्खलना से समझ में पूर्ण वाक्य न आया। आप क्या फरमा रहे हैं ? बात दोहराई गई पर असमझ ने बाना पहना। स्पष्ट न हो सका। भावी का संकेत कौन समझने में समर्थ था ? और फिर कहा—गोचरी से निमटो।

सभी कक्ष से बाहर निकले ही थे कि श्वास की गति तीव्र होने

लगी। सभी को संकेत दिया। साध्वी वर्ग एकत्र हो गया, उपस्थित हो गया। नवकार की धुन लगाई जाने लगी। बारह बजने वाले थे। श्वास की गति में वृद्धि होती जा रही थी। भव-चरिम का प्रत्याख्यान, जड़ का प्रत्याख्यान कराया गया—और विजय मुहूर्त आ गया। क्रूर कराल काल ने भी निगाहें डाली। देखते-देखते, अरिहन्त-अरिहन्त का स्मरण करते आत्मा पर विजय प्राप्त कर, वेदना को उसी स्थान पर छोड़, असीम समता वाहन पर आरूढ़ हो पिंजरे का पंछी उड़ गया। मृत्यु रूपी नागिन का सपेरे के रूप में मृत्यञ्जय ने स्वागत किया।

सूर्य प्रचण्ड ताप उगल रहा था। दिशा, विदिशा, धरा धधक रही थी सूर्याग्नि के तीक्ष्ण आतप से। वह डाल रहा था अपनी क्रूर नजरें और इधर सर्वत्र हाहाकार छा गया। सिर छत्र उठ गया। हा-हा! अब कौन मार्ग दर्शन देगा! दुखियों के सहारे, दीनों के नाथ! आज सभी असहाय हो बिलख रहे थे। धरा व दिशाओं के साथ सारा जनमानस शोकाग्नि में सम्मिलित हो गया। जिसने भी सुना, दौड़ा चला आ रहा था। जिसने भी देखा, नयनों से अश्रुपात हो रहा था। सुवर्ण बगिया का माली, फुलवारी के चमन को उजाड़ गया। बहारें रूठ गई थीं। नयन श्रावण भादवा से सिंचन कर रहे थे पर क्या उस जल से सिंचन हो सकता था?

कौन किसे चुप करे, ढांढस बंधाये, सान्त्वना दे? निगाहें उखड़ी-उखड़ी पुकार कर रही थीं नयनों के तारे को, अपने सिर-मौर को। पर कुदरत को यह कहाँ मंजूर था?

रेडियो ने यह दुःखद संवाद सुनाया। टेलीविजन पर भी दृश्य दिखाया गया। समाचार-पत्रों ने इसे प्रमुखता दी। जयपुर श्री संघ अपने को धन्य समझ रहा था सेवा का अवसर पाकर। आज

अमर समाधि में लीन : हम जीत गये

वे सेवाएँ छिन गयीं। लगातार चार साल से संघ यह लाभ ले रहा था। माणकचन्दजी गोलेछा, प्रेमचन्दजी घांघिया, जीवनमलजी बोहरा, राजरूपजी टांक, कुशलचन्दजी, विमलचन्दजी सुराणा एवं लालचन्दजी बैराठी ने गुरु सेवा एवं साधर्मिक भक्ति का अपूर्व लाभ लिया।

गांव-गांव और नगर-नगर में यह शोक समाचार फैल गया था। उमड़ते समुद्र की भांति चला आ रहा था जन समुदाय दर्शन करने को। कोई पैदल आ रहा था तो कोई गाड़ी से, कोई रिक्शे से तो कोई तांगे से। दूरस्थ लोगों ने सहारा लिया हवाई जहाज का। एक ही चाह थी अन्तिम दर्शन की। चिर निद्रा में शयन कर हमेशा के लिए इस संसार से विदा होने वाली गुरुवर्या श्री की एक झलक पाने की।

मानव मेदिनी का आवागमन दिन भर तो क्या रात्रि तक होता रहा। रात्रि की अन्धकार रूपी रस्सी के पाश भी टूट गये और लोग उमड़े आ रहे थे। अरिहन्त की धुन, नमस्कार मंत्र की ध्वनि निरन्तर जारी। रात्रि व्यतीत हुई और सूर्य उदित हुआ। काश ! यह रात्रि इसी प्रकार बनी रहती पर............।

मनहूस दिन और मायूस चेहरे मौन साधे उजड़ी वीरान दादावाड़ी के आंगन में एकत्र हो रहे थे। सब कुछ विद्यमान था—पर जिससे यह आबाद थी, वह जो नहीं था।

मद्रास से दौड़े चले आ रहे थे जसराजजी लूणिया। वे माँ के चरणों में विलख-विलख कर, लिपट कर, रुदन करने लगे। पार्थिव शरीर पालकी के साथ उठने ही वाला था। नयनों से झरते नेत्रों ने अंतिम विदा के दर्शन किये और 'जय जय नंदा, जय जय भद्दा' की ध्वनि के साथ ले चले आपके शरीर को मोहनबाड़ी की ओर।

और मोहनबाड़ी में स्थित पुण्य का पोरसा रूप पुण्य श्रीजी म० सा० की समाधि के निकट की भूमि पर आपका पार्थिव शरीर रखा गया। मोती डूंगरी रोड से सांगानेरी गेट, जौहरी बाजार, रामगंज चौपड़ होता हुआ जुलूस मोहनबाड़ी को पहुँचा। द्रव्यों की न्योछावर निरन्तर हो रही थी। एक सिंधी भाई ने सौ-सौ के ग्यारह नोट वार कर हवा में उछाल दिये। किसी ने अंगूठी वार कर फेरी तो किसी ने चेन।

चंदन की लकड़ियाँ और नारियलों से चिता बन कर तैयार हो रही थी। पूरी लकड़ियाँ चुनी जा चुकी थीं कि मोहनदेवी मंदसौर से दौड़ी-दौड़ी, रोती हुई चली आ रही थी। हाय ! मेरी बद किस्मती, मैं अभागी अंतिम दर्शन भी न पा सकी। आह ! गुरुवर्या मेरे किस पाप का उदय हुआ है। जवाहरलालजी राक्यान, मणिलालजी डोसी एवं लालचन्दजी वैराठी ने पार्थिव शरीर को अग्नि से स्पर्श करा दिया। धू-धू करती ज्वालाएँ आसमान को छूने लगीं। हजारों की संख्या में विशाल जन-समुदाय रो पड़ा। नित उठ जिनके दर्शन कर पावन होते थे आज वह महान् विभूति पार्थिव रूप से अंतिम विदा ले चुकी थी। पर उसकी अमृत वाणी अब भी गूंज रही थी—

बंधुओ !

जन्म के साथ मृत्यु अवश्यंभावी है।

अमरत्व को प्राप्त करना है तो पुरुषार्थ करो।

सोचो, विचारो और चिन्तन करो।

क्या मृत्यु पर किसी ने विजय प्राप्त करी है ?

हां की है !

उन्होंने, जिन्होंने कर्मों से डटकर मुकाबला किया है।

तो हमें भी यही करना है।

पर

यह शरीर तो नश्वर है, नाशवान है।

यह किसी का सगा नहीं यह दगा देगा।

सावधान हो जाओ

जागृत होवो!

भव निद्रा से मुखड़ा मोड़ना है।

जन्म मरण की बेड़ियों को काटना है।

कर्म बंधनों से मुक्त होना है।

राग द्वेष पर विजय प्राप्त करनी है।

पर कब और कैसे ?

बंधे सावधान ! उदये समभाव !!

हर पल, हर क्षण !

क्रोध, मान, माया, लोभ पास न फटकने पायें।

इनको जीतना है।

भस्मीभूत करना है क्रोध को।

दफ़न कर देनी है माया नागिन को।

माया प्रपंचों का गला घोंटना है।

लोभ को आग लगानी है।

भाग्यशालियों !

यह मनुष्य जन्म मिला है, अपने आपको समझने का। निज स्वरूप को जानने का।

यह स्वर्णिम समय है golden chance है। अवसर न चूक जाय। अन्यथा हाथ मलते रह जाओगे।

क्योंकि
आता है वह जाता जरूर है।
क्या हमें, आपको जाना है ?
तो साथ क्या ले जाना है ?

धन—धरा ?

रूप—रुपैया ?

भोग—विलास ?

शरीर—सोना ?

जर—जोरु—जमीन ?

स्वर्ण—सुन्दरी ?

माल—मिल्कत ?

स्वजन—संबंधी ?

पुत्र—परिवार ?

लाड़ी, वाड़ी, गाड़ी ?

नहीं ! नहीं ! ! नहीं ! ! !

अरे भाई—

परिवार का प्यार

यौवन का उन्माद

ऐश्वर्य की मदहोशता

ऐश आराम की सामग्री

सब कुछ यहीं पर छोड़ कर जाना है,

इनमें से कुछ भी साथ नहीं ले जा सकते ?

तो जाएगा क्या ?

दया, दान !

राग द्वेष पर विजय !

आत्मा की आराधना !

संयम की साधना ?

शासन की प्रभावना !

दुखियों की सेवा !

प्राणि मात्र के प्रति प्रेम !

यही साथ में जा सकेगा।

भौतिक वैभव धरा रह जायगा।

आत्मा का वैभव संग में चलेगा।

तैयार हो जावो !

जन्म की नहीं

किन्तु

मृत्यु की तैयारी करनी है।

मृत्यु को मंगलमय बनाना है।

ताकि

फिर जन्म ही न हो।

पाथेय ले लो, संबल ले लो,

टिकिट ले लो ।

जीवन व्यर्थ न जावे ।

जीना तो शान से,

मरना तो शान से ।

जय प्राप्त करनी है पराजय न होने पावे ।

याद रखो !

कोई किसी का नहीं !

कुछ किसी का नहीं !

हमें स्वयं को अपना उत्थान करना है,

अपना विकास करना है ।

अपना बनाया बनता है ।

अपना ही बिगाड़ा बिगड़ता है ।

तो सम्भल जाओ !

अन्यथा यह संसार

राग द्वेष की आग है

विषय भोगों का कीच है

जलता हुआ दावानल है

दुःखों की खान है ।

बचो ! मेरे बंधुप्रो !! बचो !!!

यह श्मशान की धधकती प्राग संदेश दे रही है—

प्रवेश का अंतिम चरण प्रस्थान है।

मिलन के पश्चात् जुदाई है।

उदय के साथ प्रस्त भी होना है।

जिसका प्रारम्भ हुमा है, उसका अंत भी होता है।

मंजिल पर पहुँचना है

तो प्रारब्ध ग्रौर पुरुषार्थ को

साथ लेकर चलना है।

उससे

चैतन्य तो जागृत करना है।

सहज भाव में स्वस्वभाव में ग्राना है।

ग्रात्मा राम में लगी कर्म पंकिलता

का प्रक्षालन करना है।

हमें ही करना है

क्योंकि—

कर्म किसी ने नहीं हमने ही

किये हैं ग्रौर कर्म फल हमें ही

प्राप्त हो रहा है।

जिसका ज्वलन्त, प्रत्यक्ष उदाहरण था आपका जीवन, आपका व्यक्तित्व। आधि, उपाधि को जीत लिया था—आपने समाधि से, समता से, सहिष्णुता से। जीत थी वेदना पर समता की। व्याधि पर समाधि की। परस्पर प्रतियोगिता थी वेदना और समता में और जीत पा ली थी—आपने समता का सहारा लेकर। वेदना हार गई थी और आप जीत गए थे। व्याधि ने, पीड़ा ने अपना करतब दिखाया था और पुद्गल शरीर के साथ चिपट गई थी पर आपने किया मुकाबला। मानो दोनों और दो प्रत्याशी थे। एक ओर थी व्याधि और दूसरी ओर थी समाधि। एक प्रत्याशी बनी वेदना तो री बनी समता। और गगनचुम्बी ज्वालाएं विजय पताका फहरा रही थी। दिग् दिगंत में उस जीत का संदेशा प्रसारण कर रही थी।

"अब हम अमर भये न मरेंगे"।

श्रीमती कंचनबाई संचेती

(धर्मपत्नी श्री ताराचन्दजी संचेती, जयपुर)

की पुण्य स्मृति में प्रकाशित ।